

पूज्य "भाईश्री" लालचंदभाई के "जीवन की झलक"

(१) मंगलाचरण :-

अभेद को अनुभव करनेवाले; शाश्वत सुख को पीनेवाले
अनंत गुण के भंडार, हम पर करुणा करनेवाले,
ज्ञान जल सींचनेवाले; रत्नत्रय साधनेवाले,
सिद्ध पद देनेवाले, सिद्धालय में रहनेवाले।

धन्य सौराष्ट्र की धरती को

वास्तव में तो काठियावाड़ की मिट्टी की कोई ऐसी ही विशेषता है कि यह धरती माता एक के बाद एक अनेक धर्मात्मा - महात्मा पुरुषों की भेंट देती हुई महक रही है। यह सौराष्ट्र की भूमि भगवान नेमिनाथ - तीर्थंकर की भूमि के साथ ही पवित्र पुण्यभूमि के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त हुई है। और उसके बाद इस अग्नि पर आचार्य धरसेन, भूतबली और आचार्य पुष्पदंत के द्वारा महान कार्य श्री गिरनारजी पर हुआ।

काठियावाड़ की धरा आज से लगभग १०९ वर्ष पूर्व महापुरुषों की गौरवमयी गरिमा की गाथा गाती हुई फिर से धन्य बनी। पिछली एक शताब्दी में यह अनेक महामनीषि पुरुषों की जन्मदात्री रही है। जैसे श्रीमद् राजचंद्रजी, लौकिक स्वतंत्रता के सूत्रधार महात्मा गांधीजी, परमार्थ लोक के क्षितिज को बतानेवाले अध्यात्म युगपुरुष कानजीस्वामी और उनके मंगलमय सानिध्य में स्वानुभूतिमयी धर्मरत्न मातायें पूज्य बहिनश्री चंपाबेन और पूज्य बहिन शांताबेन हुई हैं। इसप्रकार सौराष्ट्र की पुनीत वसुंधरा अनेक धर्मात्माओं की जन्मभूमि और कर्मभूमि के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त हुई है।

(२) समयसार आदि परमागमों की प्राण प्रतिष्ठा :-

पूज्य गुरुदेवश्री के आगमन से पहले भरतक्षेत्र की वसुधा पर समयसार आदि परमागम तो थे लेकिन उनमें प्राण सींचने वाला कोई नहीं था। उनका सार बताने वाला कोई नहीं था। प्रवचन होते थे लेकिन उनमें अध्यात्म नहीं था। चिंतन था लेकिन उसमें ज्ञानचेतना नहीं थी। ध्यान तो था लेकिन उसमें निरपेक्ष ध्येय तत्त्व नहीं था। इस प्रकार यह युग भाग्यहीन और दरिद्रतापूर्ण था। जैनधर्म अंधविश्वास, वेष और संप्रदायों के पाखंड और कर्मकांड-आडंबरों की कारावास में श्वास लेता था। धर्म के नाम पर शुभभावरूपी मिथ्यात्व नस-नस में बहता था। आत्मधर्म क्रियाकांड की काली कोठरी में निहित था। ज्ञानचेतना लुप्तवत् हो गई थी। ऐसे पंचमकाल में भव्यों के भाग्योदय से, मिथ्यात्व के प्रलयकाल में, दैवयोग से सीमंधरदूत आध्यात्मिक पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी हमारी तीर्थंकरों की भूमि पर पधारे।

(३) अज्ञान अस्त और सम्यग्ज्ञान का अरुणोदय :-

घोर अज्ञान अँधकार से छाई हुई इस भूमि पर अध्यात्मज्ञान से जगमगाते हुए ज्ञानभानु का उदय हुआ और फिर से कुंदामृत की पवित्र मंदाकिनी समस्त विश्व में अस्खलितरूप से प्रवाहित हुई। कर्मकांड और आडंबरों के नागपाश में बंधे हुए अनेकानेक भव्य जीव मुक्त हुए। मिथ्या मान्यताओं का निषेध कराकर, उसमें से धर्मबुद्धि छुड़ाकर, ज्ञानचेतना के द्वारा पुनः अध्यात्म का तूफान फैलाया, और समयसार आदि में रहे हुए चैतन्यदेवता की आत्मीय अनुभूतिमयी जैन-शासन की भावश्रुतगंगा अविरत प्रवाहित हुई और उसके साथ ही तत्त्वज्ञान की लतायें नवपल्लवित हुई।

(४) मुक्तिदूत कहानगुरु ने ज्ञायकभाव का डंका बजाया :-

स्वतंत्रता के उद्घोषक कहान गुरुदेव ने मात्र मुक्तिमार्ग ही नहीं बताया; परंतु स्वयं रत्नत्रय मोक्षमार्ग पर आरूढ़ होकर, आसन्न भव्य जीवों को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से अलंकृत किया, और लाखों भव्य जीवों को वीतरागी मार्ग में दीक्षित किया। पिछली बहुत सी सदियों से जो कार्य नहीं हुआ था ऐसे उस शुद्धात्मलक्षी प्रचंड मार्ग का मधुर महिमागान हुआ। जो अवर्ण्य प्रचार-प्रसार-प्रकाशन-प्रवितरण का बहुमूल्य कार्य विश्ववंदनीय परम पूज्य गुरुदेवश्री से हुआ, उन गुणगाथाओं को शब्दों की परिधि में बांधा नहीं जा सकता।

(५) कहानयुग जैनशासन के मुकुट के शिरोमणि पूज्य श्री लालचंदभाई :-

सीमंधर स्वामी की दिव्य-देशना द्वारा बोधिप्राप्त केवली, श्रुतकेवली और संतो के समागम से... सीमंधर जिनसूत्रों के गहन रहस्यों को अंतर में भरकर, परम मंगलमय संदेश लानेवाले कुंद-अमृत-कहानयुग नभोमंडल के तेजस्वी सितारे, शासन-स्तंभ, पंडित शिरोमणि शुद्धात्म रसास्वादी, जिन्होंने जैन-जगत में अध्यात्म का गौरववंत स्थान सहज ही प्राप्त किया है, ऐसे पूज्य कहान गुरुदेव के अनन्य भक्त रत्नों में से कोहिनूर ऐसे पूज्य 'भाई श्री' लालचंदभाई अमरचंदभाई मोदी के जीवन झरमर की अद्वितीय जगमगाती हुई झलक।

(६) जीवन दर्शनरूप संक्षिप्त जीवन यात्रा :-

गगन के गवाक्ष में से और धरती के तल में से दिव्य-सुगंध फैलाती हुई विधि के धन्य पलों में (वि. सं. १९६७ ज्येष्ठ शुक्ल नवमी रविवार तारीख १६-६-१९१० के दिन) बालक लाल का जन्म होने पर धरती शोभायमान बनी। बालक लाल के पवित्र आगमन से सौराष्ट्र का (मानवदर तहसील का) लिंगुड़ा गाँव धन्य बना। वैसे तो हजारों मातायें पुत्रों को जन्म देती हैं लेकिन धन्य हैं माता फूलबा की गोद को कि जिन्होंने ऐसे सिंह-नररत्न को जन्म दिया। बालक 'लाल' पिताश्री अमरचंद भाई के ज्येष्ठ पुत्र थे। वे कुल चार भाई और एक बहन थे, उनका कुल परंपरा धर्म स्थानकवासी जैन-संप्रदाय था।

(७) महापुरुषों के मुखमंडल के प्रतिबिंब की पारदर्शिता :-

अमर के 'लाल' की बाल चेष्टायें अन्य बालकों से विलक्षण थी। मनमोहक रूप और दैवी तेज मन को सुहाने वाला था। जैसे चंद्र की चाँदनी खिलती है वैसे ही 'लाल' की बाल कलायें खिल रही थी। जन्म से ही उनमें असाधारण प्रतिभा के दर्शन होते थे। लगभग १३-१४ वर्ष की छोटी उम्र में उन्होंने माताश्री का वात्सल्य गँवाया।

(८) बचपन से ही गुणानुरागी और धर्मानुरागी शोधक थे :-

बचपन से ही स्थानकवासी संप्रदाय की पुस्तकें पढ़ते, एवं प्रौषध और निर्जल उपवास करते! शोधकवृत्ति होने से मात्र ९ वर्ष की उम्र में बालक 'लाल' को प्रश्न हुआ कि "जिनेंद्र भगवान की पूजा किसलिए?" अन्य किसी की क्यों नहीं? उसका उत्तर उन्हें अल्प समय में स्वयं से ही मिल गया! पूर्व के संस्कार होने के कारण अंदर से उत्तर आया कि "भगवान की पूजा तो गुणों की पूजा है, किसी व्यक्ति की पूजा नहीं है।"

(९) लौकिक शिक्षण और नौकरी :-

लौकिक शिक्षण धोराजी में प्राप्त किया, बाद में अंग्रेजी भी सीखी थी। श्री अमरचंदभाई के ज्येष्ठ पुत्र होने से कुटुंब की जिम्मेदारी आ जाने पर वे मात्र १७ या १८ वर्ष की छोटी उम्र में नौकरी पर लग गये। वे छोटी उम्र से ही परिश्रमी, सत्यनिष्ठ, मृदुभाषी, कोमल हृदयी और विनयवान थे। उनका दायित्व कुटुंबीजनों के प्रति विशेष होने से और उनकी प्रकृति प्रथम से ही लेट-गो करने की होने से कुटुंब और समाज में प्रेम के पात्र बने। सौम्य व्यक्तित्व के धारी, मंद कषायी, सरल हृदयवाले, करुणाशील होने से दूसरों के दुःख में सहभागी होने के लिये हर समय तत्पर रहते थे।

(१०) परिणय और गृहस्थपना :-

धंधे.... व्यापार और नौकरी के कारण समग्र कुटुंब लिंगुड़ा से वेरावल आ गया। ई. स. १९२८-२९ के वर्ष में १८-१९ वर्ष की उम्र में शांताबेन नाम की कन्या के साथ परिणय हुआ। वे (शांताबेन) दो पुत्र और एक छोटी दो वर्ष की पुत्री को छोड़कर स्वर्ग पधारीं। उसके बाद कुटुंब की विशेष जिम्मेदारी आ जाने से नवलबेन के साथ गृहस्थवास हुआ और तीन पुत्र और तीन पुत्री इस प्रकार से सांसारिक बोझ के साथ लौकिक-धर्म का पालन करते जाते थे। उनकी व्यवहार कुशलता अद्भुत थी, उनकी (लौकिक) वाणी व्यवहार सरल होने से कभी किसी को उनकी तरफ से दुःख नहीं होता था। गृहस्थपने में भी उनका जीवन आदर्श रूप और अनुकरणीय था।

(११) बचपन से ही सत्य की खोज रहती :-

स्थानकवासी संप्रदाय में से इतना जानने को मिला था कि नवतत्त्व का श्रद्धान वह सम्यग्दर्शन है, इसलिए नौ तत्त्व का स्वरूप समझने की - जानने की पहले से ही उत्कंठा रहती और उस बारे में उपाश्रय के साधु महाराज से पूछते। उन्होंने कहा कि, "लाल! तुझे जो चाहिए वह समग्र कहीं किसी आगम में नहीं है, बिखरा हुआ है।" बस, तब से अंदर से उन आगमों के प्रति मन उठ गया, उन पर क्रोस (X) लग गया। उसके बाद जब पूज्य गुरुदेवश्री का परिचय हुआ, श्री समयसारजी शास्त्र हाथ में आया, उसमें १३ नंबर की गाथा पढ़ी तो वहाँ से जानने को मिला कि भूतार्थनय से नौ तत्त्वों को जानने पर नियम से सम्यग्दर्शन होता है। इस वाक्य पर अंदर से बहुत ही मंथन चलता, फिर स्वयं से ही 'भूतार्थनय' का खुलासा आया। मात्र २१ वर्ष की उम्र में श्रीमद् राजचंद्रजी की पुस्तक हाथ में आई और वह पढ़ने पर उन्हें ऐसा लगा कि इन पुरुष को कुछ अलग ही कहना है; लेकिन तब उनके ख्याल में नहीं आया। इसप्रकार श्रीमद्जी उनके परोक्ष उपकारी हैं।

(१२) विधि की धन्य पलों में जेतपुर आना हुआ :-

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन संवत् १९९६ में जेतपुर हुये। पूज्य भाईश्री किसी काम से जेतपुर गए थे। वे जहाँ जाते वहाँ उन्हें साधु-साधवियों के दर्शन करने की भावना रहती; और उस बारे में पूछने पर जानने को मिला कि सोनगढ़ के कानजी महाराज यहाँ आये हैं, तब उन्हें मन में ऐसा हुआ कि 'अपना काम हो गया!' फिर पूज्य भाईश्री पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन करने उनके निवास स्थान पर गये। दोपहर का समय था, पूज्य गुरुदेवश्री अकेले बैठे थे, पूज्य भाईश्री ने स्थानकवासी की रीति के अनुसार ही उठ-बैठ पूर्वक वंदना की। उसके बाद पूज्य गुरुदेवश्री ने पूछा, भाई! "कहाँ से आते हो?" "वेरावल से आता हूँ।" गुरुदेव ने कहा, "अच्छा।" फिर थोड़ी देर तक पूज्य गुरुदेवश्री ने भाईश्री के सामने देखा। फिर वे अपने आप बोलने लगे कि यह बात ऊँचे प्रकार की है। कोई अंदर की बातें हैं, तुम जब सोनगढ़ आओगे न तब अंदर की बात करूँगा। इसप्रकार गुरु-शिष्य का प्रथम मिलन हुआ। पहली मुलाकात में ही पूज्य गुरुदेवश्री के ज्ञान में पूर्व भव का जैसे ज्ञान ही न हो गया हो! ऐसा हमें लगे बिना नहीं रहता।

(१३) वेरावल से हमेशा के लिये राजकोट आना हुआ :-

पूज्य भाईश्री को वेरावल का हवा-पानी शारीरिक प्रकृति के अनुकूल न होने से उन्हें 'अस्थमा' की तकलीफ हुई और उसके उपचार के लिये बार-बार राजकोट आना होता था। विद्वान-आत्मारथी डॉ. चंदुभाई के साथ परिचय हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री राजकोट पधारे तब संवत् १९९९ में भवांतकारी मंगल प्रवचनप्रसादी का पान किया। पूज्य गुरुदेवश्री की देशना में आया "शुभभाव तो कषाय की मंदता है। दुःख का कारण है।" यह बात सुनकर गंभीर व्यक्तित्वधारी पूज्य भाईश्री को चोट लगी। अरे! ये क्या कहते हैं? जिसे हम धर्म का कारण मानते हैं उसे तो गुरुदेव कषाय की मंदता कहते हैं! उस मंगल दिवस से अंदर से सांप्रदायिकता का आवरण दूर होने लगा। कोमल हृदय में "शुभभाव वह कषाय की मंदता है" ऐसी गूँज होने लगी। अंदर से बेचैनी होने लगी, जिज्ञासा वृद्धिगत हुई और सतत झंखना होती थी कि "मुझे जैनधर्म का अभ्यास करना है।"

(१४) ४० (चालीस) वें वर्ष में तत्वज्ञान का अभ्यास शुरू किया :-

अनेकों सितारों के मध्य चाँद तो अलग ही दिखता है। वैसे ही आपश्री की तत्वज्ञान की तृषा रग-रग में से उठती और लौकिक मान छोड़कर निर्माणपने अडिग निश्चयपूर्वक दिगंबर धर्म की नींव की प्राथमिक शिक्षा, जैसे कि द्रव्य-गुण-पर्याय, निश्चय-व्यवहार, अकर्ता-कर्ता, निमित्त-उपादान, अनेकांत, स्याद्वाद, नय-निक्षेप-प्रमाण वगैरह जैनधर्म के मूलभूत सिद्धांतों को समझा।

जिस विद्वान पंडित के पास जाकर 'जैन-सिद्धांत-प्रवेशिका' सीखनी थी, उन्होंने कहा कि मुझे प्रातः चार बजे के बाद का समय अनुकूल है और सुबह छह बजे के बाद मैं अपनी प्रवृत्ति में व्यस्त हूँ; इसलिए यदि तुम्हें तत्वज्ञान सीखना हो, तो सुबह-सुबह आओ। जिज्ञासावृत्ति के धारक पूज्य भाईश्री ने पौष महीने की कड़कड़ाती हुई सर्दी में जाना शुरू किया। घर में किसी को नहीं कहा, नहीं तो वे जाने न देते! तब कभी बुखार भी आ जाता और सर्दी की तो प्रकृति पहले से ही थी, इसप्रकार प्राथमिक पाठशाला का शिक्षण प्राप्त किया। साथ में आत्मारथी विद्वान डॉ. चंदुभाई और उनकी उम्र के बहुत से मुमुक्षुओं ने अभ्यास शुरू किया। पूज्य भाईश्री ने शरणलाल पंडितजी से पूछा, मैं शास्त्र स्वयं सीधा

(निरालंबीरूप से) कब पढ़ सकूंगा? पंडितजी ने कहा कि छह महीने के पश्चात् सीधा शास्त्र का अभ्यास कर सकोगे।

(१५) निमित्त की मुख्यतावाले पंडित के चक्कर में और पूज्य गुरुदेवश्री की अपार करुणा :-

जैसे सूर्योदय होने पर सूर्य की किरणों अपनी लालिमा चारों तरफ बिखेरकर अंधकार को दूर करती हैं वैसे ही पूज्य गुरुदेवश्री ने समस्त मुमुक्षु जनों के हृदय कमल में व्याप्त अज्ञान अंधकार दूर करके ज्ञान-प्रकाश के द्वारा उन्हें जागृत किया है। चिर अज्ञान के संस्कार के कारण पूज्य भाईश्री का ग्रुप एक निमित्त की प्रधानतावाले तर्कबाज पंडित के बाणों से बिंध गया। पूज्य गुरुदेवश्री को ख्याल आया कि ये बालक निमित्त-प्रधानी पंडित के चक्कर के भँवर में फँस गए हैं। फिर प्रत्येक रविवार को दो-तीन गाड़ियों के द्वारा सब सोनगढ़ जाते। प्रवचन का विषय जबकि दूसरा होता था लेकिन पूज्य गुरुदेवश्री समयसार की ग्यारहवीं गाथा का भावार्थ निकालकर पढ़ते, देखो! "जीवों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष अनादि से है।" उसके ऊपर विस्तृत स्पष्टीकरण करते। ऐसा पहली बार हुआ तब तो उन्हें ख्याल नहीं आया। फिर दूसरी बार जब सोनगढ़ गए तब वापस ग्यारहवीं गाथा का भावार्थ पढ़ा..... तब पूज्य भाईश्री को लगा कि विषय से विषयांतर होकर पूज्य गुरुदेव हमें ही कहते लगते हैं, फिर तीसरी बार सोनगढ़ गए तब भी गुरुदेवश्री ने ग्यारहवीं गाथा का ही भावार्थ निकाला; तब पूज्य भाईश्री को ख्याल आया कि, अरे! यह टोकना तो हमारे लिये है। मेरे ऊपर अपार निष्कारण करुणा बरसाते हैं और उनके हृदय में यह बात प्रकीर्णित हो गई। इसप्रकार पूज्य गुरुदेवश्री के समागम से यथार्थ पुरुषार्थ शुरू हुआ।

(१६) गुरु की पहचान में परीक्षा-प्रधानी :-

जैन-सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त करने के बाद उनके सामने दो व्यक्ति थे। एक हमारे तारणहार पूज्य गुरुदेव और दूसरे दिगंबर साधु कि जिन्हें समयसार की संस्कृत टीका (कंठस्थ) मौखिक थी। परीक्षा का काल था। अंदर में द्वंद चलता था कि गुरु के पद पर किसको स्वीकारना! जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि; जैसा बिंब वैसा ही प्रतिबिंब; इस न्याय से आपश्री निष्पक्ष और स्वस्थतापूर्वक विचार करने के लिए जिनवाणी के साथ गिरनारजी की गोद में पहुँचे गये। पारावार मंथन चला कि दोनों में से गुरु के रूप में किसको स्वीकार करना? वहाँ आठ दिन रहे। समयसारजी का गहराई से अध्ययन किया। अंदर से निःशंक प्रतीति हुई कि : "कानजी स्वामी जो कहते हैं वह परम सत्य है।" इसप्रकार ओजपूर्ण अभिव्यक्ति होने पर निःशल्य हुये और दिगंबर साधु का मोह विसर्जित करके कहानगुरु के पाद-प्रक्षालन से धवलित बने।

(१७) अल्पसमय में उत्कृष्ट कोटि के विद्वान हुये :-

जिसप्रकार चंद्र छुपता नहीं, सूरज छुपता नहीं; वैसे ही संसार के भव-बंधनों को तड़-तड़ काटने के लिये रण-क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ शूरवीर छुपता नहीं है। युवावस्था में ही धर्म का रंग रोम-रोम में से प्रस्फुटित होता था। संसार के दुःखों से भयभीत, तीक्ष्ण प्रज्ञावंत, मोक्षाभिलाषी, गुण प्रमोदी, कषायों की उपशांतता, प्राणी दया वगैरह अनेक सद्गुण देखने को मिलते। संवत् २०१० में पूज्य गुरुदेवश्री को

परिपूर्णरूप से अपनाया। पूज्य गुरुदेवश्री के परिचय के बाद अल्प समय में २०१३ में पूज्य गुरुदेवश्री ने आज्ञा की कि "लालभाई आपको वाँचना है।" पूज्य भाईश्री ने सविनय बताया कि "साहेब! मुझे आपका परिचय हुये मात्र थोड़ा ही समय हुआ है, और मुझे आपके सानिध्य की जरूरत है।" तब लोहपुरुष रामजी बापूजी ने कहा "काल गौण है"। फिर गुरुदेवश्री ने आज्ञा की कि "तुम जाहिर में वाँचन करो, तुम्हें अंदर में से नये-नये न्याय आयेंगे।" इसप्रकार गुरुदेवश्री की भावना और सकल संघ का प्रेम होने से राजकोट जिनमंदिर में जिन-वाँचन शुरू किया। तब पूज्य भाईश्री की उम्र लगभग ४४ वर्ष की थी। वर्षों तक राजकोट जिनमंदिर में प्रवचन किये। इसप्रकार राजकोट संघ के ऊपर आपश्री का अपार उपकार है। अब 'धर्म योगक्षेम' का कार्य तो उनका जीवन ही बन गया। शुद्धात्मा के स्वरूप को आगम से, पूर्वाचार्यों को अग्र रखकर और पूज्य गुरुदेवश्री की साख से अध्यात्म रसिकता का प्रवाह शुरू हुआ। अनेकान्तमयी अमृत-सरिता का पान करने के लिये, निज-वैभव की प्राप्ति के लिये निज में ही खोकर, स्वभाव को समर्पित हो गये।

(१८) श्री गिरनारजी में चट्टान के ऊपर एकांत में आत्ममंथन :-

राजकोट के निकटवर्ती तीर्थक्षेत्र श्री गिरनारजी के ऊपर आपश्री बार-बार जाते। एक बार समयसार के पूरे कर्ता-कर्म अधिकार का स्वाध्याय स्वतंत्ररूप से किया। तब पूरे कर्ता-कर्म अधिकार की विषय-वस्तु समझ में आ गई, लेकिन एक ९५ नंबर के कलश का यथार्थ स्वरूप समझ में नहीं आया, और उसका उत्तर स्वयं से ही छह महीने बाद मिल गया। इसप्रकार प्रथम से ही स्वतंत्र विचारक थे; एवं स्वरूप के शोधक थे। आपश्री का शुरुआत से अंत तक का जीवन प्रयोगात्मक था। तत्त्व-निर्णय, प्रयोग और आत्मानुभव के ऊपर ही वजन था।

(१९) जामनगर के पुराने दिगम्बर वीरजीभाई वारिया के साथ घनिष्ठ परिचय :-

श्री वीरजीभाई वारिया सौराष्ट्र में सबसे पुराने दिगंबर मुमुक्षु थे, वे आत्मज्ञानी थे। वे राजकोट आते और सूक्ष्मतत्त्व-चर्चा करते तब उनका एक प्रश्न पूज्य भाईश्री अपने प्रवचनों में बहुत बार दोहराते। वीरजीभाई ने पूछा "लालचंदभाई! क्या जानने में आता है?" पूज्य भाईश्री ने उत्तर दिया कि स्तंभ जानने में आता है। तब वीरजीभाई ने कहा कि स्तंभ जानने में नहीं आता "ज्ञान जानने में आता है।" तब पूज्य भाईश्री ने कहा अभी तो मुझे स्तंभ ही जानने में आ रहा है। लेकिन जब मुझे ज्ञान जानने में आयेगा तब मैं कहूँगा कि "ज्ञान जानने में आता है।"

(२०) आपश्री के द्वारा शुरुआत में दिगंबर साधु और विद्वानों से पूछे गए प्रश्न :-

(१) "पुत्र के लक्षण पालने में से पहचाने जाते हैं" उसी तरह पूज्य भाईश्री की प्रतिभा झलके बिना नहीं रहती थी। उन्होंने संवत् २००८ के वर्ष में पंडितजी से प्रश्न किया कि "आत्मा सापेक्ष है या निरपेक्ष है?" अन्य एक प्रखर दिगंबर साधु से प्रश्न किया कि "सम्यग्दर्शन होता है वह सविकल्पदशा में होता है या निर्विकल्पदशा में होता है?" उन विद्वान ने उत्तर दिया "भैया मिश्र अवस्था है।" उसके बाद एक प्रश्न पूज्य गुरुदेवजी के शिष्यवर्ग के विद्वान से किया, "आत्मा कर्ता नहीं और कारण नहीं तो उसका क्या अर्थ?" तो उत्तर मिला कि कर्ता नहीं, कारण नहीं इन दोनों का अर्थ एक ही है। तब पूज्य भाईश्री को लगा कि आचार्य भगवान दो शब्द लिखते हैं कर्ता नहीं, कारण नहीं, तो उनका अर्थ भी

अलग-अलग होने चाहिए।

(२) समयसार गाथा १३ की टीका में "भूतार्थनय से नौ को जानने पर नियम से सम्यग्दर्शन होता है" - ऐसा अन्य शास्त्रों में कहीं है या नहीं? वरना नौ तत्त्व को जानने पर सम्यग्दर्शन - यह तो प्रचलित बात है। और उसमें एकवचन से निकलता है.... लेकिन... 'भूतार्थनय' विशेषण कहाँ है उसके लिये तत्त्वार्थ-सूत्र की तीन टीकायें हैं। (१) उमास्वामी की (२) अकलंकदेव की (३) आचार्य विद्यानंदी की। तीनों टीकाओं को देखा, परंतु 'भूतार्थनय' शब्द कहीं नहीं मिला। फिर पूज्य गुरुदेवश्री गौहाटी गये हुए थे तब विद्वान फूलचंद सिद्धांत शास्त्री से पूछा कि : समयसार गाथा १३ के अलावा दूसरे किसी शास्त्र में 'भूतार्थनय से' नौ को जानना लिखा है? उन्होंने कहा समयसार गाथा १३ के अलावा अन्यत्र कहीं नहीं है।

(३) पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में खुलासे आ जाते और अधिक तो पूर्व के गहन संस्कार के कारण स्वयं से समाधान भी आ जाता था। समयसार, नियमसार का अभ्यास करते हुये एक प्रश्न बहुत समय से होता था कि कर्ताबुद्धि तो चौथे गुणस्थान पर ही चली गई है, फिर भी नियमसार में परमार्थ प्रतिक्रमण में पुनः पुनः आचार्य भगवान ऐसा किसलिए लिखते हैं, कर्ता नहीं; कारण नहीं; अनुमोदक नहीं। इसमें कोई रहस्य है! वह प्रश्न डिपोजिट रखा रहा। फिर एक बार इश्वरिया महादेव मुमुक्षु भक्तजनों के साथ तत्त्वचर्चा करने गये। वहाँ एकाएक खुलासा आया, प्रमोद का पार नहीं रहा। आहा! कर्ता नहीं कारण नहीं इसमें तो उपचार से कर्तापना जो सविकल्प में आता है, उसका निषेध है और उसके निषेध में श्रेणी आती है। इस विषय की गंभीर और मार्मिक चर्चा इस पुस्तक में आने वाली है।

(२१) सच्चे हीरे के पारखी जौहरी :-

जब पूज्य भाईश्री १९६२ के वर्ष में सोनगढ़ रहने के लिये गये तब एक मार्मिक प्रसंग बना। यह प्रसंग तो हम सभी को अपने जीवन के साथ बुन लेने जैसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री के योग में आने के बाद निमित्त कर्ता और उपादान कार्य, व्यवहार साधन और निश्चय साध्य वगैरह प्रकार की अनेक विपरीत मान्यताओं का निषेध हो गया।

पूज्य भाईश्री अपने घर परमश्रुत प्रभावक मंडल द्वारा प्रकाशित हुये हिंदी परमात्मप्रकाश का स्वाध्याय करते थे। गुजराती अनुवाद तब हुआ नहीं था। स्वाध्याय करते-करते दूसरा भाग, गाथा नंबर १४ के ऊपर आये तो, "व्यवहार साधन निश्चय साध्य" ऐसा वाक्य आया। अंदर से आत्मा ने "ना" कहा।

अब दूसरी तरफ से यह कथन लिखनेवाले भी ज्ञानी हैं और अंदर में यह बात बैठती नहीं थी, फिर आधे-पौने घंटे शास्त्र बंद करके बैठे रहे। तब विचार आया कि "लाओ न, मूल संस्कृत पाठ में क्या लिखा है वह तो देखूँ?"

जैसे ही मूल संस्कृत टीका में देखा तो "भूतनैगमनय से" व्यवहार कहा है। फिर प्रसन्नता का कोई पार नहीं रहा। आचार्य भगवान ने क्या गजब कलम चलाई है! हिंदी अनुवादकर्ता से यह "भूतनैगमनय से" यह शब्द छूट गया इसीलिए घोटाला हो गया।

क्योंकि पूज्य गुरुदेवश्री की बात अंदर से बैठी थी न कि "व्यवहार से निश्चय नहीं होता।" अनुवादक भी ज्ञानी। वे कहते हैं व्यवहार से निश्चय होता है। अब यह कथन सत्य मानें तो दोष लगता

है, इसीलिए ऐसे कथन हों तब हमें गहराई में जाकर उसका मर्म निकालना चाहिए कि ज्ञानी कह रहे हैं तो उसमें कुछ मर्म होगा। ज्ञानी गलत नहीं हैं, लेकिन उनके कथन में से रहस्य शोधना चाहिए।

शिष्य का प्रश्न है कि साहेब, आपने ही कहा कि जब आत्मा को आत्मा का अनुभव होता है तब देशनालब्धि का व्यवहार छूट जाता है। तो फिर व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा कहाँ रहा?

श्री गुरु कहते हैं, हम "भूतनैगमनय से" कहते हैं, अनुभव से पहले उसका लक्ष देशनालब्धि के ऊपर था और बाद के समय में उसका लक्ष छूटा और अनुभव हुआ तो फिर "भूतनैगमनय से" उससे हुआ है ऐसा निमित्त का ज्ञान कराया है, वह कथनमात्र है। ऋजुसूत्रनय से तो अनुभव के वक्त देशनालब्धि के ऊपर से लक्ष छूट जाता है। नियम कैसे टूटे? निमित्त से उपादान में कार्य होता ही नहीं। निश्चय की बात अमृत-तुल्य है।

(२२) जीवन में उतार-चढ़ाव के समय भेदज्ञान का सहारा :-

बहुत ही अति अल्प व्यक्तियों में ऐसी असाधारण क्षमता देखने को मिलती है कि जीवन के चाहे जैसे उतार-चढ़ावों में भी अपने मार्ग से च्युत नहीं होते। ऐसे अनोखे व्यक्तित्व के धारक थे - पूज्य भाईश्री। उनके जीवन में बाहर के उदयभाव प्रचंड वेग से आते और तब क्रमबद्ध के न्याय से उस काल में "होने योग्य होता है, जाननहार जानने में आता है," ऐसे भेदज्ञान के मंत्र में निश्चल रहते थे। संयोगी उदयभाव "मेरे ज्ञान के ज्ञेय नहीं हैं" ऐसी अमर जीवन-संजीवनी अमर के "लाल" को मार्ग से कभी विचलित न होने देती। उदयभाव कपूर की तरह विलीन हो जाते और अंतरंग भेदज्ञान की धारा अस्खलितरूप से बहती। बुद्धि-प्रतिभा से युक्त और न्याय-नीति के प्रेमी होने से कुटुंब में, मित्र वर्ग में, मुमुक्षुओं में विवाद हुआ हो तो भेदज्ञान के हथियार के द्वारा समाधान लाकर विवाद का अंत लाते थे और साथ में तत्त्वज्ञान का प्रसाद देते थे। इसप्रकार करुणावंत होने से निःस्वार्थ भाव से, सन्मार्गी बनकर सत्य के अन्वेषक रहते।

(२३) प्रवचनों में हमेशा शुद्धात्मा केंद्र-बिंदु पर रहता :-

ओजस्वी वाणी, टँकोत्कीर्ण गर्जना, निःशंक प्रतिपादन, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व, सिद्धांत-बोध पर वजन, व्यवहार का निर्दयपने निषेध वगैरह सद्गुण तो उन्हें विरासत में मिले थे। यह उनके पूर्व के मूलभूत संस्कार की स्फुरण थी।

जिनवाणी के आधार से और सर्वज्ञ की साक्षी से वे जब पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी के रहस्य खोलते तब शुद्धनय से 'सिद्धालय' यहाँ खड़ा कर देते। परमागम में संचित निधि की मुक्त भाव से निरंतर प्रभावना करते।

जिसप्रकार वर्षा के आगमन से पहले आनेवाली ठंडी हवा, वर्षा के आगमन की सूचना घोषित करती है और गगन में घिरे हुए काले बादलों को देखकर मयूर नृत्य करता है, उसीप्रकार शुद्धनय की अमृत-वर्षा से तत्वों की बौछार बरसती थी। आनंद से भरी अमृतवाणी श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देती थी। भव्यजनों के मन-मयूर नाचने लगते और श्रोताजन शुद्धात्ममयी हो जाते थे।

पूज्य भाईश्री वीतराग की गद्दी पर बैठकर प्रवचन करते तब उनकी वाणी, शुद्धात्मतत्वरूप उछलती रुचि, स्वभाव का बल और चैतन्य प्रभु की प्रसन्नता छा जाती थी। समयसार आदि के न्यायों

की चाँदनी सोलह कलाओं से खिलती और रोम-रोम से सत् की सरिता प्रस्फुटित होती थी।

(२४) जैसे तिल में तेल समाया हुआ होता है वैसे उनके जीवन में अध्यात्म गूँथा हुआ था:-

उनके सौन्दर्यमयी गौर वर्ण गुलाबी-स्वर्णिम मुख मंडल पर सदैव प्रसन्नता छाई रहती। साथ ही अविच्छिन्न चिंतवन की धारा दृष्टिगोचर होती रहती। समयसार का चिंतवन-मनन, दिन-रात पारावार रहता! आत्मा के अकर्तापने की धुन रहती थी। "धुन रे धुनिया अपनी धुन, जाकी धुन में पाप न पुण्य।"

संवत् २०१५ के वर्ष में समयसार पढ़ते-पढ़ते बंध अधिकार आया और उसमें आया कि : "धर्मास्तिकाय ज्ञात होता है, वह अध्यवसान है।" जैसे पर को मारता-जिलाता हूँ, सुखी-दुःखी कर सकता हूँ वह तो अध्यवसान है ही, परंतु धर्मास्तिकाय द्रव्य ज्ञात होता है तो वह भी समकक्षी अध्यवसान का पाप है। ऐसे गंभीर सूत्र की गंभीरता भासित हुई।

ज्ञान के स्वभाव में परपदार्थ को, राग को ज्ञेय बनाने की शक्ति-सामर्थ्य नहीं है; फिर भी "मैं पर को जानता हूँ" ऐसा अभिप्राय - वह अनंत संसार का कारण है। इसप्रकार निर्णय अधिक से अधिक दृढ़तर होने लगा।

(२५) पूज्य गुरुदेव और शुद्धात्मा का विरह लगा, सोनगढ़ रहने गये :-

समयसार का रंग आत्मा के प्रदेश-प्रदेश में से उछल रहा था। अकर्तारूप ध्येय भगवान आत्मा का तो सर्वप्रथम निर्णय भी हुआ था। और पश्चात ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या? उसका स्वरूप भी समझ में आया और उस प्रकार से निर्णय भी हुआ। जैसे बालक माता से दूर नहीं रह सकता, वैसे पूज्य गुरुदेवश्री से दूरी खटकने लगी। सन् १९६२ में सोनगढ़ में किराये से मकान लिया और "वसंत-निवास" में रहने गये। स्वर्णपुरी के प्रांगण में प्रादुर्भूत पूज्य गुरुदेवश्री की निर्झरती दिव्य-वाग्धारा प्रयोगशाला में रूपांतरित हुई और मानो निर्भर हो गए।

पूज्य भाईश्री सोनगढ़ रहने गए तब सोनगढ़ में जाहिर में समयसार का वाँचन पूरा हो गया था और चार-पाँच दिनों से पूज्य गुरुदेवश्री ने दूसरे शास्त्र का स्वाध्याय शुरू किया था, लेकिन जब गुरुदेवश्री को पता चला कि लालचंदभाई यहाँ रहने आए हैं, तो उन्होंने जाहिर में कहा, "ये लालभाई! नए-नए हैं न! और यहाँ रहने आए हैं, इसीलिए फिर से समयसार का स्वाध्याय शुरू किया है।" पूज्य भाईश्री के ऊपर ऐसी अपार करुणा थी।

(२६) परमार्थ पथिकों की पंथिनी - अर्थात् स्वर्णपुरी :-

योगसार की तरह कार्तिक अनुप्रेक्षा में तत्त्व की विरलता बताते हुये कहते हैं:-

विरलाः निश्रुण्वन्ति तत्त्वं, विरला जानान्ति तत्त्वतः तत्त्वं।

विरला भावयन्ति तत्त्वं, विरलानां धारणा भवति॥

जगत में 'तत्त्व' को कोई विरला पुरुष ही सुनता है। सुनकर भी तत्त्व को यथार्थरूप से कोई विरले ही जानते हैं; जानकर भी तत्त्व की भावना कोई विरले ही करते हैं। इस जगत में यथार्थ आत्म-स्वभाव की बात दर्शानेवाले ज्ञानी मिलने बहुत दुर्लभ हैं और ज्ञानी के पास से जब यह बात सुनने को मिले तब "यह तो अनंतकाल से नहीं समझा ऐसी मेरे स्वभाव की अपूर्व बात है," ऐसे उल्लसित वीर्य से आदर लाकर सुननेवाले जीव ही परम तत्त्व की उपासना के मुख्य अधिकारी हैं।

पूज्य भाईश्री की आसन्न-भव्यता ऊर्ध्व होने पर... भेदज्ञान सूक्ष्म होते-होते... सामने तौलिया सूख रहा था और अंदर से तीव्र निषेध आया कि "यह तौलिया जानने में नहीं आता..." "जाननहार जानने में आता है।" और उपयोग शीघ्र अंतर्मुख होते ही..... चिद्रूप-आत्मा को चैतन्यधारा से प्रकाशित करती हुई और मिथ्यात्व की कालिमा का क्षय करती मोक्षमार्गी चैतन्य की चेतना की चमत्कृति के चरितार्थरूप स्वरूपाचरण चारित्र से अलंकृत हुये। अपूर्व, अनुपम अतीन्द्रिय रस का अमृतपान किया। अतृप्त परिणति पुनः तृप्त-तृप्त हुई।

गुरुगम, वर्तमान योग्यता और पूर्व के गहरे संस्कारों के कारण समयसार की छठवीं गाथा के गहन भावों को हृदयंगम करके, संवत् २०१७ के साल में, स्वर्णपुरी में श्रावण महीने में वसंत-निवास में स्वानुभूति से प्रमाणित हुए। इसप्रकार सीमंधर-कुंद-अमृत-कहान दिव्यध्वनि के दैदीप्यमान दिवाकर ने दिव्य-स्वभाव का दिग्दर्शन करके; अमर आत्मा का अमृत पीकर, आत्म-अनुभव की वज्रभूमि पर अडिग रहकर, भव्य जीवों को स्वरूप-संपत्ति का पारमेश्वरी दान दिया। इसप्रकार स्वानुभूति मंडित कहान शिष्यरत्न राशि में आपश्री का समावेश हुआ।

(२७) अमरचंदभाई मोदी ने अमरत्व को वरण किया :-

कहानसूर्य भरत क्षेत्र को चारों ओर से प्रकाशित करते हुए आगे बढ़ रहा है। पूज्य भाईश्री सोनगढ़ रहने गए। उनसे पहले भाईश्री के पिताजी पूज्य गुरुदेवश्री की शीतल छाया में थोड़े वर्ष रहे थे। पूज्य भाईश्री के सम्यग्दर्शन के बाद - मात्र ढाई वर्ष के बाद, पूज्य बापूजी अमरचंदभाई ने भी भेदज्ञान-ज्योति को उदित किया।

जब पूज्य गुरुदेवश्री संवत् २०२० के वर्ष में राजकोट पधारे थे, तब कलश-टीका के प्रथम कलश के प्रवचन में स्वानुभूति से अंकित अनेकांतमयी अमृत-सरिता का शीतलपान किया। प्रवचन में ही पुरुषार्थ अपूर्व वेग से वर्धमान होकर अंतर्मुख हुआ और स्वरूपानंद की चिंगारी का प्रदेश-प्रदेश में से पूर-प्रवाह उमड़ा। इसप्रकार पिता-पुत्र ने चिंतामणि नरजन्म को सार्थक किया।

(२८) पुरुषार्थमूर्ति श्री सोगानीजी के साथ गाढ़ परिचय

अध्यात्म युगदृष्टा - पूज्य गुरुदेव श्री के आत्मानुभूतिमयी परिवार में चैतन्यमूर्ति श्री सोगानीजी जैसे तीक्ष्ण प्रज्ञावंत सपूत भी पके। अध्यात्म-विभूति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी और पूज्य भाईश्री के बीच घनिष्ठ मैत्री थी। वे परमार्थ रस प्रेरित अस्खलित पुरुषार्थ के स्तंभ थे। उनके बीच सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म चर्चायें होती। पूज्य सोगानीजी पूज्य भाईश्री को, पूज्य गुरुदेवश्री का "लघुनंदन" कहते थे।

पूज्य भाईश्री ने एक प्रसंग कहा, कि धीरे-धीरे सोनगढ़ में मुमुक्षुओं को ख्याल आता गया कि सोगानीजी को सम्यग्दर्शन हुआ है और अमुक मुमुक्षु उनकी तत्वचर्चा सुनने के लिये जाते थे। फिर एक विद्वान मुमुक्षु भाई ने पूज्य भाईश्री को कहा कि, "भाई! आप भी पधारो।" फिर उन मुमुक्षु विद्वान से पूज्य भाईश्री ने एक मार्मिक प्रश्न किया कि "सोगानी जी अपरिणामी त्रिकाली की चर्चा करते हैं, वह तो ठीक है लेकिन कभी पर्याय की बात करते हैं या अकेले ध्रुव की ही चर्चा करते हैं?" तो विद्वान भाई ने कहा कि "नहीं, अनुभव की और पर्याय की बात भी करते हैं।"

पूज्य भाईश्री ने कहा कि सांख्यमत वाले, वेदांतमत वाले अपरिणामी की बात करते हैं, लेकिन

एक सर्वज्ञ भगवान का जैनदर्शन ऐसा है कि उसमें द्रव्य-पर्याय दोनों की चर्चा है। उसका कारण है कि एक समय में 'ध्येयपूर्वक ज्ञेय' होता है न? पूज्य भाईश्री के पिताश्री बहुत प्रमोदित होते कि लालचंद, तू यह ध्येय और ज्ञेय की साथ-साथ जो बात करता है, वह....लाईन बिल्कुल ठीक है। मुमुक्षु श्रोताओं को ध्येय का स्वरूप और ज्ञेय का स्वरूप सुनने पर किसी का पक्ष नहीं होता और उन्हें पहले से ही पक्षातिक्रांत का स्वरूप मानसिक ज्ञान में अंकित हो जाता है।

फिर 'द्रव्यदृष्टि-प्रकाश' के प्रकाशन के लिए पूज्य भाईश्री ने भगीरथ प्रयास शुरू किये। पूज्य गुरुदेवश्री के समक्ष बात आई कि इस महान कार्य के प्रकाशन की समस्त जिम्मेदारी के कर्णधार पूज्य भाईश्री हैं। यह सुनकर पूज्य गुरुदेवश्री ने प्रकाशन की 'हरी झंडी' दे दी। इसप्रकार पूज्य गुरुदेवश्री की सम्मति वह ही भाईश्री के प्रति अखंड विश्वास का द्योतक है और उसके फलस्वरूप आज हमारे पास पूजनीय "द्रव्यदृष्टि-प्रकाश" उपलब्ध है।

(२९) पूज्य भाईश्री का घर अर्थात् कि मंडन मिश्र का घर :-

जैसे कि मंडन-मिश्र का घर कहाँ है? तो उसका उत्तर है कि.. जहाँ मैना और तोता संस्कृत के श्लोक गाते हों; जहाँ वेदों की चर्चा होती हो, वह मंडनमिश्र का घर है। वैसे पूज्य भाईश्री का घर कहाँ है? जहाँ अबाध्य और अकाट्य युक्ति से सिद्धांतबोध के झरने झरते हों, जहाँ अविरत शुद्धात्मा की चर्चा के रसपान होते हों, जहाँ सदा ही तत्त्व-जिज्ञासुओं की भीड़ रहती हो, जहाँ परमार्थ की गंगा, अध्यात्म की यमुना, स्वभाव की सरस्वती का त्रिवेणी संगम होता हो; जहाँ सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूप (तिरंगा) रत्नत्रय लहराता हो; ऐसा परमार्थ आत्म-आराधनास्वरूप ज्ञानमंदिर, वह पूज्य भाईश्री का घर था। इस चर्चा में विद्वान... वकील.... डॉक्टर और समग्र मुमुक्षुगण को धाराप्रवाहरूप से निःसंकोचपने पुरुषार्थ की प्रेरणा मिलती। व्यापार आदि की प्रवृत्ति से निवृत्ति होने पर पिता-पुत्र सूक्ष्म और गंभीर चर्चा दिन रात करते थे।

बाहर गाँव से मुमुक्षु समाधान और तत्त्वचर्चा सुनने के लिए आते। प्रत्येक जीव के लिए उनके द्वार खुले रहते थे। पूरे दिन स्वाध्याय, चिंतवन में मैंने कभी उनमें थकान, बेचैनी या अरुचि देखी नहीं।

(३०) इस युग के सर्वाधिक अस्खलित पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री और भाईश्री :-

जैसे कानजी स्वामी इस युग के सर्वाधिक चर्चित पुरुष थे; वैसे ही उनके भक्त-रत्न पूज्य भाईश्री भी बीसवीं सदी के अंत के सर्वाधिक चर्चित पुरुष रहे। चाहे पक्ष के हों, चाहे विपक्ष के हों..... परंतु जैन मुमुक्षु जगत में "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता" इस सिद्धांत की जितनी चर्चा चलती है.... देखने को मिलती है, उतनी भाग्य से ही दूसरे सिद्धांतों की चर्चा देखने को मिलती है।

(३१) अध्यात्म क्रांतिकारी आदर्श विभूति पूज्य भाईश्री :-

क्रांतियाँ तो संसार में बहुत सी चला करती हैं, जैसे कि औद्योगिक-क्रांति, शैक्षणिक-क्रांति, राजकीय-क्रांति। ऐसी अनेक क्रांतियों में लेशमात्र सुख नहीं है। जबकि कानजी स्वामी ने तो जैनशासन के स्वर्ण-पट के ऊपर आध्यात्मिक-क्रांति का सर्जन किया और इस युग को नयी भेंट दी। इसप्रकार धर्म-क्रांति द्वारा परमार्थ अहिंसक-क्रांति स्थापित की। उसीप्रकार पूज्य भाईश्री ने "मैं जाननहार हूँ,

करनार नहीं। जाननहार जानने में आता है। वास्तव में पर जानने में नहीं आता।" इस "वास्तव में" की क्रांति के सर्जक, साधना के शिखर पर विराजमान ज्ञान-क्रांति के स्थापक को... नमोस्तु... नमोस्तु।

(३२) तत्ववेत्ता..... सन्मार्गदर्शी पूज्य भाईश्री :-

पुरुषार्थमूर्ति सोगानीजी के द्रव्यदृष्टि-प्रकाश का अध्ययन करके बहुत से मुमुक्षु एकांत में चढ़ गए। पर्याय है ही नहीं, पर्याय की बात मत करो, पर्याय को अलोकाकाश में भेज दिया, अर्थात् पर्याय के प्रति तीव्र द्वेष हो गया।

ऐसे समय में पूज्य भाईश्री का कार्यवश मुंबई जाना हुआ। तब बापूजी को कहा... कि : मैं मुंबई तो जाता हूँ...और वे लोग यदि मुझसे मिलने के लिये एवं प्रवचन-तत्वचर्चा में आयेंगे, तो तो मैं समझाऊँगा, लेकिन नहीं आए तो फिर मैं लाचार हूँ। परंतु पूज्य भाईश्री की छाप "दृष्टि के विषय के मास्टर" जैसी होने से धीरे-धीरे एक के बाद एक सभी आने लगे, फिर तीन महीने यह बात चलाई कि 'ध्येयपूर्वक ज्ञेय' होता है, तब ही अनुभव होता है। सम्यग्दर्शन वह आत्मा है। कढ़े हुये दूध में जावन की बात कही कि दृष्टि का विषय दृष्टि में आता है, तब ज्ञान में ज्ञेय कैसा होता है!

फिर उन्होंने दृष्टांत दिया, कि "एक व्यक्ति के हाथ में जलन हो रही है, तो जलन दूर करने का उपाय क्या? कि बर्फ की शिला के ऊपर हाथ रख दो। वैसे ही दृष्टि के विषय में पर्याय नहीं है, लेकिन ज्ञान के विषय में भी पर्याय कथंचित् अभेद न होवे, तो अनुभव नहीं होगा।" "नहीं स्पर्शती हुई स्पर्श करती है" वगैरह चर्चा होने पर ऑपरेशन सफल हुआ। फिर बाबूभाई झवेरी का सोनगढ़ जाना हुआ, बाबूभाई गुरुदेव के पास गए। गुरुदेव बहुत ही गुस्से में, 'यह क्या चलाया है, बाबूभाई?' "साहेब! आपने लालचंदभाई को भेजा न.... और उन्होंने तो इसप्रकार बात की, जिससे अब हम सब ठिकाने आ गए हैं।" "अच्छा! लालभाई ने ऐसा कहा?" और गुरुदेव खूब प्रसन्न हुए।

(३३) आगम के आलोक में अमृत निकाला :-

समस्त मुमुक्षु समाज निश्चयनय और व्यवहारनय की चक्की में पिस रहा था, तब अत्यंत निष्कारण करुणा करके मानो किसी ऋषि का अलभ्य वरदान मिला हो, इसप्रकार ध्रुवतत्त्व की परिधि के धरातल पर स्वभाव से स्वभाव को देखने की चक्षु प्रदान की और वह है "द्रव्य स्वभाव-पर्याय स्वभाव।"

अनादिकाल से दो नयों के झूले पर झूलते हुये और नयरूपी इन्द्रजाल में फँसे हुये ऐसे हम लोगों को शुद्ध चैतन्यतत्त्व की उपलब्धि दुष्कर थी। नयों रूपी आँधी द्वारा प्रवाहित भँवर में फँसे हुये अभिमन्यु युग को "आत्मा नयों से पार" का अलभ्य, निर्भय, निरपेक्ष जिनसूत्र इस भरत क्षेत्र की भूमि पर अप्रतिहत प्रवाहित किया और साथ-साथ निज स्वभाव की भीष्म प्रतिज्ञा दर्शायी कि : मैं दर्शन दूँगा तो सम्यक् एकांत में ही दर्शन दूँगा। इसप्रकार स्वभाव के दिग्दर्शक ने, स्वभाव की प्रतिज्ञा यहाँ के भूमंडल में बहाई और निरपेक्ष स्वभाव की प्रभावना से वायुमंडल की लालिमा को नयज्ञान से वर्जित किया।

स्वभाव निरपेक्ष, निर्विकल्प, अक्रमिक है। जबकि नय-ज्ञान सापेक्ष, सविकल्प और क्रमिक है। इसप्रकार नयज्ञान से पार निज स्वभाव दर्शाकर अनंत तीर्थकरों के द्वारा प्रतिपादित मार्ग का जय-

विजय किया। इसप्रकार इस युग के स्वर्ण इतिहास में स्वभाव के अजोड़ प्रकरण का समावेश हुआ।

इसप्रकार अमर के लाल ने निरपेक्ष भगवती प्रज्ञा का अमरसूत्र देकर नयातिक्रांत होने के लिये अमोघ स्वाभाविक मंगलसूत्र विश्व को दिया। यह इस युग का आश्चर्य है। अनागत में... साढ़े अठारह हजार वर्ष अर्थात् कि पंचमकाल के अंत तक अमर के 'लाल' के द्रव्य स्वभाव-पर्याय स्वभाव का अमृतपान करके अनेकानेक भव्य जीव अमरत्व को प्राप्त करते रहेंगे।

(३४) कर्ताबुद्धि और ज्ञाताबुद्धि के भूत को भगाया :-

अनादि के कर्ताबुद्धि के मिथ्या अभिप्राय को पूज्य गुरुदेवश्री ने मूल में से उखाड़ दिया और आत्मा अकर्ता है - जैनदर्शन की इस पराकाष्ठा का ढिंढोरा पीटा। तदुपरांत गुरुदेव ने ज्ञाताबुद्धि के नाश की बात तो की थी, परंतु मुमुक्षुओं का ध्यान (उस ओर) नहीं खिंचा था, इस बात पर ध्यान पूज्य भाईश्री ने खिंचा। "मैं पर को जानता हूँ" ऐसी ज्ञाताबुद्धि को मूल में से निकालकर, मैं पर को जानता ही नहीं, ज्ञान ज्ञायक को ही जान रहा है, और मुझे "ज्ञाननहार ही ज्ञात होता है" ऐसे शुद्धोपयोगरूप सम्यक् स्वभाव का शंखनाद फूँका। इसप्रकार तीर्थकरों ने इस युग को बहुमूल्य भेंट दी। अद्वितीय उपहार दिया।

(३५) साधक को भावश्रुतज्ञान में केवलज्ञान के दर्शन :-

पूज्य गुरुदेवश्री ने एक बार रात्रि चर्चा में फरमाया था कि : "श्रुतज्ञान में किसी समय किसी को केवलज्ञान के दर्शन होते हैं।" तब किसी ने प्रश्न किया कि "श्रद्धा अपेक्षा से न?" पूज्य गुरुदेवश्री ने फरमाया : नहीं, ज्ञान अपेक्षा से। पूज्य गुरुदेवश्री को भावश्रुतज्ञान में केवलज्ञान के दर्शन हुये थे, और पूज्य भाईश्री को भी कलकत्ता में पूज्य गुरुदेवश्री की उपस्थिति में केवलज्ञान के दर्शन हुए थे। यह बात अनुभव से सिद्ध है। श्रुतज्ञान में केवलज्ञान के परोक्ष दर्शन, यह बात समयसार कलश के आधार से, प्रवचनसार में आये हुए द्रव्यनय से, नागसेन मुनि के तत्वानुशासन से, श्रीमद् जी के बोल से, पूज्य गुरुदेवश्री के आधारों से सिद्ध करते। इसप्रकार किसी-किसी साधक को पूर्णज्ञान कैसा होनेवाला है; उसके परोक्ष दर्शन होते हैं। और अंत में प्रतिभास के माध्यम से इस विषय को अद्भुत रीति से सिद्ध करते थे। पूज्य भाईश्री फरमाते कि केवलज्ञान के दर्शन पंचमकाल में होते हैं, इस बात को लक्ष में रखना। तुम्हें सम्यग्दर्शन होगा न तब काम लगेगा। इसप्रकार मंगल मांगल्य की मांगलिकता के मेघ बरसानेवाले मुक्तिदूत को अहर्निश प्रणाम।

(३६) स्वपरप्रकाशक अर्थात् क्या? ध्रुव सत्य की घोषणा :-

स्वपरप्रकाशक बहुत गंभीर विषय है। ज्ञान के महारथी के अलावा इस विषय पर विद्वान भी विश्लेषण न कर सकें ऐसे स्वरूप का विश्लेषण पूज्य भाईश्री ने किया है। सर्व प्रथम तो स्वपरप्रकाशक व्यवहार का कथन है। उसमें लक्ष की मुख्यता नहीं है परंतु प्रतिभास की मुख्यता है और प्रयोजन की सिद्धि हमेशा लक्ष से ही होती है। स्वपरप्रकाशक प्रमाण होने से पूज्य नहीं है। वह व्यवहार का निषेधक नहीं है, उसमें व्यवहार का व्यवच्छेद करने की ताकत नहीं है। ऐसी स्वपरप्रकाशक वाली प्रमाणज्ञान की पर्याय में से विधि-निषेधपूर्वक जो निश्चयनय का अवलंबन करता है, उसे ही शुद्धात्मा का अनुभव होता है।

इसप्रकार स्वप्रकाशक पूर्वक अंदर का निश्चय स्वपरप्रकाशक उस ही समय प्रगट होता है, वह निर्विकल्प ज्ञान - सविकल्प ज्ञान का द्योतक है। इस स्वभाव में जानने की मुख्यता रही हुई है।

अब साधक जब सविकल्प दशा में आता है तब जाना हुआ प्रयोजनवान बनता है। रागादि विभाव का अतींद्रिय ज्ञान में प्रतिभास देखकर 'साधक राग को जानता है' ऐसा उपचार करने में आता है। साधक को तो "ज्ञान का ज्ञान होता है" - **जो ज्ञान आत्मा को जानता हुआ ही परिणमता है।**

और एक अंतिम स्वपरप्रकाशक कि: जो बाल-गोपाल सभी को प्रति समय ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है, उसमें निरंतर स्वपर दोनों का प्रतिभास हुआ करता है; उसे भी स्वपरप्रकाशक ज्ञान कहा जाता है। मुद्दे की बात तो यह है कि प्रयोजन की सिद्धि कैसे हो? उस तरफ वजन आना चाहिए।

वास्तव में प्रमाण का पक्ष कहो या स्वपरप्रकाशक का पक्ष कहो, वह किस प्रकार भयंकर वस्तु है उसे उदाहरण द्वारा देखते हैं। जिसप्रकार भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य वगैरह की मृत्यु किसलिए हुई? क्या उन्हें न्याय, धर्म पसंद नहीं था? पांडवों के प्रति पुत्र प्रेम नहीं था? धर्म पसंद था और पांडवों के प्रति वात्सल्यभाव भी था; फिर भी...? फिर भी वे अधर्म का त्याग-निषेध नहीं कर सके। अर्थात् कौरवों का पक्ष नहीं त्याग सके। इसलिए उनकी युद्ध के मैदान में मृत्यु हुई।

वैसे ही स्वपरप्रकाशक अर्थात् स्व को भी लक्ष करके जाने और पर को भी लक्ष करके जाने, ऐसे स्वपरप्रकाशक को ज्ञान माने; अथवा ज्ञेयाकार ज्ञान में स्व और समस्त पर एक समय में युगपत् प्रतिबिंबित होते हैं, उस ही ज्ञान को स्वपरप्रकाशक माने तो वह प्रमाणरूप व्यवहार होने से और सम्यक्त्व का प्रसव करने की उसमें क्षमता न होने से, (उससे) मिथ्यात्व उत्पन्न होता है।

स्वपरप्रकाशक का स्वरूप चार प्रकार से बताकर पूज्य भाईश्री ने उसका विशद स्पष्टीकरण किया है। इसप्रकार प्रमाण के पक्ष में से बाहर निकालकर "नयपूर्वक प्रमाण" सम्यक् एकांतपूर्वक अनेकांत का आह्वान किया है। स्वसंबंधी और परसंबंधी का जानपना जानने में आता है, ऐसे प्रमाण में भी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। क्योंकि ज्ञान को श्रद्धा पोषक बनाने पर ही सम्यग्ज्ञान का आविर्भाव होता है, उस ही समय ज्ञान जैसा है वैसा जान लेता है। पूज्य भाईश्री ने इस विषय पर ध्यान न खींचा होता तो हम सबकी अनादि की मिथ्या मान्यता दृढ़तर हो जाती। **"मैं पर को जानता हूँ" ऐसे अज्ञान की अंधकारमयी गहरी खाई में से बाहर निकाला और मुमुक्षु समाज को त्वरा से सम्यक् प्रज्ञा की रोशनी प्रदान की।**

(३७) इंद्रियज्ञान ज्ञान नहीं है... उसके जनक पूज्य भाईश्री :-

इस कलिकाल में आपश्री की निःशंक प्रतिपादन की विस्मयकारी शैली और ज्ञान के स्वरूप की अत्यंत स्पष्टता देखकर आपश्री का बारंबार स्मरण होता है। खंडज्ञान को जीतकर, अखंड ध्रुव में रहने का निर्देशन किया है।

मोह की उत्पत्ति का मूल कारण क्या है? इंद्रियज्ञान को जीतने पर मोह किस प्रकार जीत लिया जाता है? मोह तो सेकेंड नंबरी है, "मैं पर को जानता हूँ" वह इंद्रियज्ञान की उत्पत्ति का कारण है। ऐसे विपरीत ज्ञान और दृष्टि के गर्भ में अनंत दुःखों को प्रसव करने की क्षमता विद्यमान होने से; उससे प्रतिपल दुःख और आकुलता ही अंकुरित हुआ करती है। इसलिए "मैं पर को नहीं जानता"

भावइन्द्रिय जाने तो जानो! पूर्ण केवली के प्रतिभास को देखकर उपचार करने में आता है (कि वे लोकालोक जानते हैं), वगैरह गुप्त रहस्यों का उद्घाटन करके भावेन्द्रिय को ज्ञान मानने की अनादि की भ्रांति का विध्वंस करके, भव्य जीवों का उपयोग अंतर्मुख किसप्रकार हो? उसकी समीचीन रूप से आपश्री ने सूक्ष्म और अनुपम विधि दर्शायी है।

(३८) संयोगी - बाह्य - उदय के कारण मुंबई जाना हुआ :-

कहान लाल में ज्ञान वैराग्य शक्ति अमाप, अपार होने के कारण पंचमकाल की अनेक विकराल प्रतिकूलताओं से वे कभी आच्छादित नहीं हुए। जब-जब कर्म की काली घटा छा जाती, तब-तब और अधिक ज्ञान विवेक जागृत होता और वे निज लक्ष्य से कभी च्युत न होते। अरे! प्रतिकूलतायें तो ज्ञानियों की पवित्र साधना की कसौटी हैं।

ज्ञानी धर्मात्मा संयोगों के मध्य भी संयोगों से कैसे अप्रभावी रहते हैं! भाईश्री को (१९७२ में) ६५ वर्ष की उम्र में आजीविका उपार्जन हेतु मुंबई जाना पड़ा, तब पूज्य गुरुदेवश्री के हृदय में भारी दर्द था और उनका आर्तनाद निकला कि अरे! राजकोट 'हीरे' को संभाल न सका?

जगत की चाहे जैसी अनुकूलता-प्रतिकूलता के बीच में भी अचलमेरु के समान अडोल रहकर अनुभव की वज्रभूमि पर अविरोद्ध सर्वज्ञ का विज्ञान समझाते थे।

उनके समस्त जीवन दरम्यान अनेक तूफानी आँधियाँ आई, परंतु अपने गंतव्य से - मार्ग से वे भ्रष्ट नहीं हुए। जगत के पाखंडी तत्त्वों को..... हथियार नीचे रखकर अपनी हठ को छोड़कर, हारते हुए नजरो से देखा है। वे कहते कि "सत् बाहर आता है तो उसके विरोधी भी होते हैं" **विरोध से सत् अधिक झलकता है।** मुमुक्षु जगत के उपसर्गों के बीच में "जल कमलवत्" स्थिति वर्तती थी। आँधी - उपसर्ग कभी ज्ञान के ज्ञेय हुये ही नहीं, बाहरी उदय तो बाहर के बाहर ही रहे। ऐसे समय पर भेदज्ञान-ज्योति और ज्यादा प्रज्वलित होकर ज्ञायकमय होती। बाहर में उदयों के स्वांग और अंतरंग में आनंद की गटागटी, इस स्थिति के पारखी तो जौहरी ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री बहुत बार याद करते थे कि : "मुंबई में वहाँ लालचंदभाई प्रवचन देते हैं न? **उनकी बहुत ही निर्मल दृष्टि है।** जरा श्वास का थोड़ा दर्द है, (अभी) प्रवचन बंद कर दिये हैं, लेकिन वे पर्युषण में वाँचेंगे।" (श्री समयसार गाथा ८५ तारीख ३-८-७६ के प्रवचन में से)

अलिंगग्रहण के १८, १९, २० बोल के ऊपर के पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों में आये सूक्ष्म न्यायों को सुनकर पूज्य भाईश्री खूब प्रमुदित हुए और पूज्य गुरुदेवश्री के समक्ष प्रमोद व्यक्त किया। उस प्रसंग को अनुलक्ष करके पूज्य गुरुदेवश्री के उद्गार - "ये अलिंगग्रहण के १८, १९, २० बोल लालभाई थे तब वाँचने में आ गए थे, मुंबई जाने से पहले आए थे, कहते थे ओहो! क्या १८-१९-२० का ऐसा स्पष्टीकरण आया है! **वे तो अभ्यासी हैं न** (प्रवचनसार गाथा १७२, बोल १८-१९-२०, तारीख १३-८-७५)

आप जब मुंबई में रहते तब मुमुक्षुओं की माँग को स्वीकृत कर आप जवेरी बाजार के जिनमंदिर में प्रवचन देते थे, तब नियमसार के शुद्धभाव अधिकार और परमार्थ प्रतिक्रमण के प्रवचनों पर आपका ज्यादा वजन रहता। आपश्री फरमाते थे कि **"यह तो सार का सार है।"**

स्वयं ज्ञान का उद्गम करना वह अलग बात है, और प्राप्त ज्ञान को कोने-कोने में और **मुमुक्षुओं**

के हृदय तक पहुँचाना वह अलग बात है।

यह कार्य हर किसी के वश की बात नहीं है। उनमें तो इस प्रभावना की अपूर्व योग्यता थी। उनके द्वारा जो स्पष्टीकरण हुआ है उसकी होड़ कहान-युग का कोई मनीषी लगा सके ऐसा नहीं है।

(३९) बाहर में हर्षिस की दाह और अंदर में शीतलता :-

आज से २१ वर्ष पहले पैर में हर्षिस का रोग हुआ तब भी उनके मुखमंडल की आभा आनंदमयी दृष्टिगोचर होती। "अन्य क्षेत्रे कृतम् पापम्, धर्म क्षेत्रे विनश्यति," अनादि-अनंत चैतन्य प्राण को फिर किसकी स्पर्शना! अंदर में शीतलता के पाट पर अत्यंत मंथर हुए हैं, जो अतीन्द्रिय आनंद के प्रति अत्यंत उदासीन सहज वर्तते हैं, अनंत शांतिमय वैभव में विराजमान हैं, उनको अशांति कैसी? कर्मों की संतान भी तड़-तड़ निर्जर जाती है। पूज्य गुरुदेवश्री इस प्रसंग को याद करके कहते हैं कि : हमारे लालचंद भाई (वैराग्य) वैरागी में बसते हैं। उनके शरीर में फोड़ा (हर्षिस) है, यहाँ अभी रहकर गए हैं। दवा के लिए मुंबई जाना पड़ा। फोड़े में जलन..... जलन अग्नि की चिंगारी, ऐसा हुआ है।

(समयसार गाथा २६३, ६४, ६५ तारीख २८-९-७९ प्रवचन नंबर ३२३)

(४०) प्रतिभाशाली पूज्य भाईश्री :-

अध्यात्म-आकाश के महान नक्षत्र से जैन-समाज का कौनसा व्यक्ति अनजान है? ऐसा कौन व्यक्ति होगा कि जिसने पूज्य भाईश्री का नाम न सुना हो? ऐसा कौन मुमुक्षु होगा कि जिसने पूज्य भाईश्री के मुखारविंद से बरसती शुद्धात्म गंगा का अमृत पान न किया हो? फिर वह भले ही साधक हो, तत्त्व जिज्ञासु हो, आदर्श आत्मारथी हो या क्रियाकांड मग्न हो, समर्थक हो या विरोधक हो; परंतु समस्त मुमुक्षु समाज उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व से चिरपरिचित है।

उनकी अध्यात्म वाणी की छाप समग्र मुमुक्षु जगत पर छा गई थी। अध्यात्म लोक के जैन मुमुक्षु समाज के ऊपर उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व की गहरी छाप प्रत्येक के हृदय में प्रतिबिंबित है। हर एक मुमुक्षु अपनी भावना व्यक्त करे या न करे परंतु उसकी आत्मा के प्रदेशों को झकझोरने में आए तो? उसके अंतरंग अभिप्राय को भाषा वर्णना के तोल से तोलने में आए तो? ध्रुव सत्य की घोषणा करते हुए एक ही बुलंद आवाज कर्णपटल पर सुनने को मिलेगी कि..... पूज्य गुरुदेवश्री के बाद जैन-शासन के अमर व्यक्ति हों तो वे पूज्य भाईश्री लालचंद भाई हैं! उनका जन्म पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी का रहस्य प्रकाशित करने के लिए ही जैसे न हुआ हो! ?

आपश्री जितने सरल, निखालस, कोमल ऋजु हृदयी थे, उतने ही सिद्धांत-मार्ग में अडोल, अजेय, और अटूट थे। अपने ध्येय से कभी च्युत नहीं हुये, ये **प्रखर ज्ञानी का लक्षण है।** बाहरी उदयभावों के व्यवहार से ज्ञाता रहते.... किसी विरोधी को कुछ उत्तर न देते.... एकदम मौन लेकर आत्म आराधना करते। वह उनकी उत्कृष्ट आत्मारथता का प्रतीक है। इसप्रकार आपश्री मुमुक्षु समाज के हृदय के अमूल्य हार थे। आपकी यह धवल कीर्ति सदा अमर रहेगी।

(४१) कहान युग को धर्म सुभट लाल का अमूल्य योगदान :-

आत्मकल्याण के मार्ग पर चलने वाले और चलाने वाले दीर्घ दृष्टिवंत, हितचिंतक ऐसे पूज्य भाईश्री का प्रत्येक क्षेत्र में महत्व का योगदान रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री की उपस्थिति में दिगंबर जैन

स्वाध्याय-मंदिर सोनगढ़ के ट्रस्टी रहे थे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन प्रकाशित करने के लिए श्री कुंदकुंद कहान - परमागम प्रवचन ट्रस्ट की स्थापना में आपश्री प्रेरणादायी थे। उसके उपरांत दिगंबर राजकोट जिनमंदिर के ट्रस्टी भी थे।

और पूज्य गुरुदेवश्री की शुद्धात्म-प्रधान अध्यात्मवाणी का विशेष प्रचार करने हेतु एवं विद्यार्थी ज्यादा संख्या में विद्वान बनें इस हेतु से आपश्री कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के ट्रस्टी और चेयरमैन भी थे। द्रव्यदृष्टि-प्रकाश को प्रकाशित करने में मुख्य सूत्रधार थे, साथ ही आपने उसका संकलन भी किया। पूज्य बहिनश्री की मनाई जानेवाली सम्यक्त्व जयंती को यथाविधि आमंत्रण पत्रिका द्वारा महोत्सवरूप में मनाने का आपका सुझाव था।

पुनः सोनगढ़ में परमागम मंदिर के पंचकल्याणक के समय पूज्य गुरुदेवश्री की हृदय की भावना से और आज्ञा से विधिनायक भगवान के पिता बनने का सौभाग्य पूज्य भाईश्री को प्राप्त हुआ।

१९७७-७८ के वर्ष में विदेश की भूमि नैरोबी में जिनमंदिर के शिलान्यास के समय भी पूज्य गुरुदेवश्री ने पूज्य भाईश्री और पं. बाबूभाई फतेहपुरवाले को भेजा। वहाँ शुद्धनय की अपूर्व प्रभावना की... भेदज्ञान की अमृत-वर्षा बरसायी। और वहाँ समस्त मुमुक्षु समाज में छा गये।

उनके विषय में पूज्य गुरुदेवश्री के उद्गार :-

बाबूभाई फतेहपुर वाले और ये लालचंदभाई! ये पंद्रह लाख का नैरोबी में जिनमंदिर का मुहूर्त हुआ न? वहाँ गए थे न? बाबूभाई और लालचंदभाई। लालचंदभाई मोदी राजकोटवाले और बाबूभाई। **लालचंदभाई की बहुत निर्मल दृष्टि है.....**

(बहिनश्री के वचनामृत बोल नं. २३१ से २३५ प्रवचन नं. ९१ तारीख ११-०९-१९७८ का प्रवचन)

पूज्य गुरुदेवश्री के कर-कमलों द्वारा जिसकी स्थापना हुई है, ऐसा जयपुर टोडरमल स्मारक भवन, जहाँ से जैनदर्शन के विद्वान तैयार होते हैं; वहाँ भी पूज्य भाईश्री बहुत वर्षों तक अनेकों बार शिविरों में प्रवचन के लिये जाते रहे और वहाँ के विद्यार्थी भविष्य में विद्वान होकर जगत में तत्वप्रचार प्रसार करेंगे ये जानकर बहुत ही हर्षित होते। साथ-साथ उनको प्रोत्साहित करते कि **"ये सब भावी के आचार्य हैं।"** और बहुत प्रमुदित होते। पूज्य गुरुदेवश्री की देशना के तत्व-प्रचार के लिये हृदय से अनुमोदन करते। और उसमें तन, मन, धन से सहयोगी बनते। **उनका समग्र जीवन तत्त्व के लिये समर्पित था।** जयपुर के विद्यार्थियों को भी बहुत आकर्षण था और पिपासु होने से..... "जाननहार जानने में आता है" वे वाले पंडितजी कब आयेंगे? अथवा तो 'ये रहित - सहित की रमतवाले पंडित हैं', इसप्रकार निष्णात तत्वज्ञ के रूप में उनको निहारते।

इस्वी सन् १९८२ के वर्ष में लंदन के दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल ने पूज्य भाईश्री की सूक्ष्म प्रज्ञावंत दृष्टिप्रधान प्रवचनशैली से आकर्षित होकर उन्हें वहाँ बुलाया। और वहाँ डेढ़ महीने रहकर जैनधर्म की विशाल स्तर पर प्रभावना की।

(४२) प्रेरणा स्रोत पूज्य भाईश्री :-

महाराष्ट्र के नासिक शहर के पास देवलाली के मध्य बने हुए दर्शनीय भव्य कहान संकुल के निर्माण में मूल दो मुख्य महापुरुषों की प्रेरणा थी (१) पूज्य शांताबेन (२) पूज्य भाईश्री, उन दोनों

धर्मात्माओं के मंगल-आशीर्वाद से..... वहाँ प्रथम शिविर का आयोजन हुआ और फिर पूज्य भाईश्री की निश्रा में बने हुये भव्य-जिनालय उनके समर्थन की साक्षी देते हुए.... जैनधर्म के गगनचुंबी धर्मध्वज लहराते हुए खड़े हैं।

भारत की सुप्रसिद्ध नगरी कलकत्ता में एक भी कानजी स्वामी प्रेरित दिगंबर जिनमंदिर नहीं था। मुमुक्षुओं की संख्या बहुत थी। पूज्य गुरुदेवश्री को जीवन के अंत समय तक एक विकल्प खटकता था कि **"कलकत्ता में अपना मंदिर नहीं है।"** पूज्य गुरुदेवश्री की भावना को साकार करने और मूर्तिमंत करने का पूज्य भाईश्री का मानो संकल्प न हो! उन्होंने हिंदी जगत के आदरणीय सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक वक्ता विद्वान बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' से कलकत्ता में शिक्षण शिविर करने की, और जिनमंदिर बनाने की अपनी भावना व्यक्त की। इन दोनों दीर्घ-दृष्टि-धारक, कुशाग्रबुद्धिवंत महापुरुषों के द्वारा पंद्रह दिवसीय शिक्षण शिविर का आयोजन हुआ।

फिर वहाँ जगह ली गई और शिलान्यास-विधि के बाद आज वहाँ जिनमंदिर, स्वाध्याय-मंदिर, वीतरागविज्ञान पाठशाला वगैरह का विशाल स्तर पर नूतन नव निर्माण का कार्य चालू है। इसप्रकार पूज्य भाईश्री के रचनात्मक सहयोग, कुशल मार्गदर्शन और प्रबल प्रेरणा के कारण कलकत्ता नगरी भाग्यशाली बनी।

(४३) जीवंत जिनवाणी का प्रकाशन :-

महापुरुषों का अंतःकरण जितना शुद्ध और पवित्र होता है, उनका बाह्य जीवन भी उतना ही शुद्ध और पवित्र होता है। पूज्य भाईश्री का व्यक्तित्व ही प्रभावशाली था। उनके जीवन में कभी अहंकार या प्रदर्शन का भाव जरा भी देखने को न मिलता। पूज्य गुरुदेवश्री के ऑडियो-कैसेट में रही हुई चैतन्यज्योति को अक्षर देहरूप में प्रकाशित करने में हमेशा पूज्य भाईश्री प्रमुख स्थान पर और अग्र रहते। प्रवचन-रत्नाकर ११ भाग छपाने की घोषणा की तब मुंबई में सोने.... चाँदी के आभूषण और पैसों की बरसात बरस पड़ी थी।

तदुपरांत नय-प्रज्ञापन, अद्वितीय-चक्षु, अध्यात्म-प्रवचन-रत्नत्रय, ज्ञायकभाव, ध्येय पूर्वक ज्ञेय, अध्यात्म-वैभव, प्रवचनरत्न आदि अनेक शास्त्रों को प्रकाशित करने में मुख्य प्रेरणा स्रोत रहे थे।

(४४) आपश्री के अपने आत्मदोहन में से निकले हुए मंत्रों की हारमाला एक मुख्य प्रतिष्ठा रखती है। जैसे कि :

(१) मैं जाननहार हूँ; करनेवाला नहीं। जाननहार जानने में आता है; वास्तव में पर जानने में नहीं आता।

(२) प्रमाण के बाहर जाना नहीं; प्रमाण में अटकना नहीं।

(३) होने योग्य होता है, जाननहार जानने में आता है।

(४) पर्याय की अस्ति, लेकिन मेरे में उसकी नास्ति; ऐसी मेरी अस्ति, वह अस्ति की मस्ती उसका नाम अनुभव।

(५) परिणाम मेरे किए बिना हुआ करते हैं। और जाननहार जानने में आया करता है।

(६) अकर्ता + कर्ताकर्म का अनन्यपना = अनुभूति।

(७) रहित पूर्वक सहित - ध्येय पूर्वक ज्ञेय।

(८) स्वपरप्रकाशक और स्वपर प्रतिभास में अंतर।

(९) एक द्रव्य स्वभाव - दूसरा पर्याय स्वभाव।

(१०) अज्ञानी प्रथम प्रमाणपूर्वक नय में आता है, जबकि ज्ञानी को नयपूर्वक सम्यक् प्रमाणज्ञान होता है।

(११) प्रतिभास (स्वपर) दो का; लक्ष एक का।

(१२) जैसे जगत में कोई निमित्त नहीं है, वैसे ही जगत में तेरे ज्ञान का कोई ज्ञेय नहीं है।

इसप्रकार अनेक सिद्धांतों की गंगोत्री बहायी है। यह आपश्री की श्रेष्ठ प्रतिभा दर्शाता है। ऐसे तो अनेक महामंत्र देकर मुमुक्षु समाज के ऊपर अवर्णनीय उपकार किया है, जिससे समस्त समाज आपका अत्यंत ऋणी है।

(४५) राजकोट की गोंधिया हॉस्पिटल में हुई अंतिम तत्वचर्चायें :-

अंतिम तीन से चार माह पूर्व से शारीरिक तबियत थोड़ी नरम रहती थी। बोन टी.बी. का मुंबई में ऑपरेशन होने के बाद तबियत ज्यादा बिगड़ी तब पूज्य भाईश्री के श्रीमुख से अपने कुटुंबीजनों को उद्देश्य करके ऐसे उद्गार निकल पड़े कि "यह देह मैं तुम्हें सौंप देता हूँ। तुम्हें इस देह का जो करना हो वह करो" और उसके बाद कुटुंबीजनों ने हॉस्पिटल में दाखिल किया।

डॉक्टर पूज्य भाईश्री की तबियत देखने के लिये आये। डॉ. ने पूछा, कैसे हो भाई? पूज्य भाई ने कहा, आनंद में। डॉ. ने कहा - लालचंदभाई आपका नाम क्या है?

पूज्य भाईश्री ने उत्तर दिया लालचंद अमरचंद मोदी।

डॉ. ने कहा - भाई! आपका पता क्या है?

उत्तर - अभी ही अनुभव हुआ। 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' वह हमारा पता है।

ज्ञानियों की अस्ति की मस्ती कोई अलग ही प्रकार की होती है। यह मस्ती किसे समझ में आये? बाहरी इन्द्रियज्ञान को आवरण आता है, परंतु अतीन्द्रियज्ञान को कहाँ आवरण आता है! "सिद्ध भगवान का शाश्वत निवास स्थान वह हमारा पता है।"

खाने की चार-छह वस्तुओं में से पूछते कि : आपको क्या खाना है? तो तुरंत ही कहते- इसमें बंध है कि मोक्ष है? मृत कलेवर की मूर्छा से प्रथम से ही निस्पृह थे और जीवन का अंत समय जब नजदीक आया तब नश्वर जड़ शरीर भी सगे स्नेहीजनों को सौंपकर शरीर के बोझ से निर्भर हो गये। फिर परिवार के सभ्य क्या करते हैं? शरीर संबंधी कोई भी विकल्प नहीं।

तारीख १७-०१-१९९८ को डॉ. ढेबर साहब पूज्य भाईश्री की जाँच करने आये तब डॉ. साहब ने पूछा "लालचंदभाई कैसे हो?" दो बार पूछा, बाद में भाईश्री ने उत्तर दिया कि "मैं त्रिकाली आत्मा हूँ।"

रात्रि में भक्त उनकी सेवा-सुश्रुषा करते और साथ में परमागम की गाथाएँ सुनाते। जब समयसार की १८१-१८३ गाथा में आया कि : "उपयोग में उपयोग है। उपयोग में क्रोधादि नहीं हैं।" यह गाथा सुनकर पूज्य भाईश्री बोले कि : उपयोग में क्रोधादि आये कहाँ से? अलग ही हैं न? फिर अलग (विशेष अपेक्षा से) हो गये। बाद में करुणा करके कहते हैं - उन्हें इकठ्ठा क्यों करते हो? फिर बोले

कि- "मैं त्रिकाल हूँ।" फिर बोले - "मैं त्रिकाल हूँ और क्षणिक नहीं हूँ।" "मैं ऐसा ही हूँ.... मैं ऐसा ही हूँ.... मैं ऐसा ही हूँ।" ऐसे तीन बार बोले। उसके बाद के दिनों में बोले कि, "जिस भाव से बंध होता है, वह भाव तेरा नहीं है।" यह बात परम सत्य है। गुरुदेव को कोई समझता नहीं है और मेरी बात कोई सुनता नहीं है।

(४६) अध्यात्मसूर्य अस्त हुआ :-

दिन पर दिन पसार हुये जा रहे थे, पाँच इन्द्रियाँ क्षीण होती जा रहीं थीं; जीवन-चक्र की शृंखला कटती जा रही थी; आयुष्यरूपी मनुष्य पर्याय क्षीणता की तरफ जा रही थी, धीरे-धीरे जीवन-ज्योति मंदतर होती जाती थी।

प्रकृति की सनातन प्रणालिका के अनुसार जगतवासी मोही जीव विश्राम के लिए नीरव-निशा के अंक में सो गये थे; कोलाहलमयी नगरी में सन्नाटा छा गया था; चंद्रमा की चाँदनी अपनी मीठी शीतलता फैलाकर सर्व प्राणियों को निलय के आँचल में सुख शैय्या दे रही थी। जागृत आत्मार्थी जीव सांसारिक कार्यों से निराकुलित होकर तत्वों का चिंतन कर रहे थे; भक्त अपने प्रिय गुरु को वैराग्य प्रेरक भक्ति सुना रहे थे, श्री समयसारजी का १८५ नंबर का कलश गाया जा रहा था तब दोनों आँखें अंतिम बार खुली और थोड़ी देर बाद.....!!

अब बाकी रहे हुए हम बालकों के पुण्य भी खत्म हो गये थे..... तारीख ४-०२-९८ के माघ शुक्ल नवमी बुधवार को रात एक बजकर बीस मिनट पर भरत क्षेत्र का अध्यात्म का स्वर्ण-इतिहास जैसे दो घड़ी को थम गया, हम सब भक्तों के हृदय की धड़कन मानो बंद हो गई; प्रिय गुरु की विदाई की वास्तविकता स्वीकारने को हम सबका मन दो घड़ी तैयार न हुआ। खैर! अंत में वास्तविकता का स्वीकार तो करना ही रहा न!

धन्य है उनका जीवन कि जिन्हें मृत्यु भी भयभीत नहीं कर सकती। "अब हम अमर भये न मरेंगे कभी।"

अमर के लाल अमृत सागर में केलि करके अमृतपान करके अमर हुए।

इसप्रकार साधक पूर्ण साधना के सोपान पर आरोहण करने सिधारे।

"महादिव्याकुक्षीरत्नम् परंपरा पथोदघोषकम् ॥

लालचन्द्रम् अहम् वन्दे कहानगुरुतत्त्वाढयम् ॥"

(४७) गुरु-शिष्य की चिर-विदाई से अध्यात्म जगत में शून्यता :-

गुरु-शिष्य के वियोग से समस्त मुमुक्षु समाज दिशा विहीन हो गया है। पूज्य भाईश्री समस्त मुमुक्षुजनों के हृदय में बसे थे। आज बालक उनकी छत्र-छाया से रहित हो गए। आपश्री की विदाई के समाचार बिजली के वेग से चारों दिशाओं में फैल गए। समग्र जैन-समाज में सन्नाटा छा गया। आपके वियोग से लाखों आँखें सजल मेघ के समान बरस पड़ी। आपश्री हमें जागृत और बलवंत बनाकर गए हैं। चैतन्य हीरा हमारे बीच नहीं है, परंतु चैतन्य हीरे की चमक अर्थात् अमूल्य तत्त्वज्ञान का खजाना विरासत में हमें सौंपकर गए हो। ऑडियो-वीडियो में संग्रहित आपकी दिव्य-वाणी आज से साढ़े अठारह हजार वर्षों तक अज्ञान अंधकार का नाश करेगी और भव्य जीवों को मुक्ति मार्ग में पुरुषार्थ

प्रदान करती हुई, पल्लवित, पुष्पित और फलित होती हुई दशों दिशाओं में यशोगान के सुरों को समृद्ध करेगी।

(४८) युवामित्र आत्मार्थी विद्वान डॉ. चंदुभाई की दी हुई श्रद्धांजलि :-

हम पाठशाला में पढ़ते तब से ही लालचंदभाई मेरे से आगे ही आगे रहे। उनमें यह विशिष्टता थी कि तत्त्व के प्रति सूक्ष्म रुचि में शुद्धात्म तत्त्व क्या है और उसकी प्राप्ति कैसे हो वह ही लगनी लगी थी। उनकी प्रवचन शैली पूज्य गुरुदेव जैसी ही थी। राजकोट संघ के ऊपर लालचंदभाई का बहुत ही उपकार है। "लालूभाई कहो या शुद्धनय कहो, वे दोनों एकार्थ हैं।"

वे द्रव्यानुयोग के निष्णात तथा भेदविज्ञान में पारंगत थे। उनको व्यवहार की बात हमेशा खटकती, कभी कहनी पड़े तो कहते भी लेकिन..... पहले उसका निषेध कराते। प्रयोजनभूत के अलावा कोई दूसरी बात ना करते। यह उनकी तत्त्व परोसने की शैली थी।

(४९) चारों तरफ छाई हुई चेतन की चैतन्य-प्रभा :-

जैन हिंदी जगत के विनम्र और मिष्टभाषी, अध्यात्मिक शैली के लोहचुम्बक वक्ता आदरणीय विद्वत हृदय श्री युगल जी साहब तो अनेक शिविरों में, पंचकल्याणकों में, पत्रों में एवं अपने प्रवचनों के दरम्यान अनेकों बार याद करते और कहते : इस.....युग में तो पूज्य गुरुदेव का तत्त्व, **आदरणीय लालचंदभाई के पास सुरक्षित है।** किन्तु! अभागा युग स्थूल बुद्धि होने से उनके सानिध्य से वंचित रह गया है। मैंने तो उनसे बहुत कुछ सीखा है। लालचंदभाईजी की इस पामर पर बड़ी अनुकम्पा है।

(५०) कथनाक्षरी कथन न पावे, अनंत गुणाक्षरी तेरा लेखन :-

हे गुण गंभीरा गुणी प्रभुवर! आपश्री के अपार गुणों का वर्णन मैं किस तरह से कर सकती हूँ!! आपश्री ने इस भूमंडल पर अध्यात्म की वाटिका को सुरक्षित रखा है, उपरांत उसमें ज्ञानानंद का सिंचन करके उसे वृद्धिगत भी किया है।

जब-जब परम श्रद्धेय पूज्य भाईश्री की याद आती है तब साथ ही अनेकों अनेक घटनाएँ एक साथ स्मृति में उभरने लगती हैं। महान व्यक्तियों के जीवन का हर कदम महान ही होता है। उनकी समस्त क्रियाओं में भी महानता के दर्शन होते हैं। जिनके जीवन में पर्यायदृष्टि का ध्वंस हुआ हो और द्रव्यदृष्टि पूर्वक ज्ञान लतायें सुविकसित होकर झूमती हों, उनका समग्र जीवन अलौकिक बन जाता है।

मुझे पूज्य भाईश्री का परिचय १९८० में अर्थात् आज से १८ वर्ष पूर्व से हुआ है। उनके प्रथम दर्शन और परिचय की छाप आज भी मेरे मन में अंकित है। चाहे जैसी विकट परिस्थिति में भी मैंने उन्हें मोक्षमार्ग से विचलित होते हुए नहीं देखा। उनका संपूर्ण आदर्श जीवन मेरे लिए सदा अनुकरणीय, प्रेरक और मार्गदृष्टा रहेगा। उनकी चैतन्य का रणकार करती हुई ज्ञान-गर्जना आज भी पुरुषार्थ प्रगटाती है। उनकी सौम्य मुखमुद्रा, दिव्य तेजस्वी विलक्षणता, भेदज्ञान की अखंड अविच्छिन्न धारा अध्यात्म-जगत में सदा सौरभ फैलाती रहेगी।

आपश्री की धर्मवीरता, वात्सल्यता सदा अमर रहेगी। आप जैसे युगपुरुष युगों-युगों तक मुक्ति संदेश फैलाते रहेंगे। जैनशासन के कण-कण में अमर के लाल की अमर गाथा अमरत्व प्रदान करती रहेगी।

(५१) मुक्तियात्रा के मनस्वी की जीवन गाथा :-

जैसे सरिता अपने लक्ष्य की तरफ निरंतर प्रयाण करती रहती है और समुद्र से मिलने पर वह स्वयं समुद्र बन जाती है; प्रयाण करती हुई सरिता के मार्ग में आनेवाले की चिर संचित तृषा शांत होती है और हरियाली खिल उठती है। उसीप्रकार आप अपनी अधूरी मुक्तियात्रा पूर्ण करने जा रहे थे तो मार्ग में हमें पथप्रदर्शक के रूप में मिले और मुक्ति मुसाफिर निज मुक्तिरमा को वरण करने के लिये फिर से मुक्तिमार्ग पर अग्रसर हो गये। आपका दुर्लभ सानिध्य हमारे जीवन पथ को सदा आलोकित करता रहेगा।

(५२) भक्ति के वर्णरूपी पुष्पों की पुष्पांजली :-

सूर्य अपनी तेजस्विता, चंद्रमा अपनी चंद्रिका, हिमालय अपनी गरिमा, समुद्र अपनी गहराई यदि आपश्री को अर्पण करे तो भी वह सिंधु में बिंदु समान अल्प ही रहेगा। तत्त्वज्ञान के तेज से दैदीप्यमान ऐसी आपकी जीवन गाथा मैं किस विधि से आलेखन करूँ? कलम में शक्ति नहीं है, शब्दों में सामर्थ्य नहीं है कि आपकी गौरवशाली गुणगाथा गाऊँ!

जिसप्रकार भगवान के ज्ञान में आता है उतना दिव्यध्वनि में नहीं आता, जितना दिव्यध्वनि में आता है उतना गणधरजी झेल नहीं सकते, जितना झेलते हैं उतना रच नहीं सकते, उसीप्रकार मेरे हृदय में से उमड़ते हुये भावनाओं के पूर को शब्द देने में मेरी कलम सर्वथा असमर्थ है। जिसप्रकार ज्ञायक भाव की कथनी कही नहीं जा सकती, वह तो केवल अनुभव की जाती है; वैसे आपश्री के अपार गुणों का वर्णन नहीं हो सकता, मात्र अनुभव किया जा सकता है।

गिनने पर गिना नहीं जा सकता, कहने से कहा नहीं जा सकता, हृदय में समाता नहीं; उसमें से क्या आलेखूँ और क्या न आलेखूँ? क्या वर्णन करूँ और क्या वर्णन न करूँ? ऐसी मीठी उलझन में से मार्ग प्राप्त करने की अथाह कोशिशरूपी यह एक मेरा नम्र प्रयास है। वस्तुतः सत्पुरुषों को शब्दों की सीमा में बाँधा नहीं जा सकता; किसी भी महापुरुष की यशगाथा कभी पूर्ण नहीं होती; क्योंकि वे स्वयं साक्षात् विराट पुराण के रूप में ही होते हैं। पूज्य भाईश्री के जीवन के प्रत्येक पेज पर एक अनोखी गाथा लिखी हुई है जिसे पढ़ने के लिये, चर्म-चक्षु नहीं परंतु अद्वितीय चक्षु - ज्ञानचक्षु चाहिए।

मेरे हृदयरूपी मंदिर में विराजमान, श्रद्धारूपी सिंहासन पर आरूढ़, अकारण करुणा के मेघ बरसाने वाले, हम बालकों के जीवन को तराशनेवाले, संसाररूपी नाव के खिवैया हे सन्मार्गदर्शी कहानलाल! हम बालक वीतरागी मार्ग पर प्रयाण करके पूर्णता को साथे और उसमें सदा आपकी प्रेरणा मिलती रहे ऐसी अभिलाषा सहित.....

उपकार के उपकृत भाव से भीगे हुये हृदयकमल में आपकी भावस्मारिका सदा प्रतिष्ठित है ऐसे जैनाकाश को.....!

"परमागम का सार जिन्होंने किया हर समय अर्पण;
ऐसे कहानलाल को, मेरे श्रद्धा सुमन समर्पण।"

**"मंगलम् भगवान् वीरो, मंगलम् गौतमो गणी!
मंगलम् कुंदकुंदार्यो, जैनधर्मोस्तु मंगलम्!!"
उपकृतता**

**स्वभाव से स्वभाव को साधनेवाले;
स्वभाव से स्वभाव को प्रकाशित करनेवाले;
स्वभाव द्वारा स्वभाव के मेघ बरसानेवाले**

उत्कृष्ट साधक "पूज्य भाईश्री" लालचंदभाई के प्रति उपकृतता।

(१) अखंडित प्रवाहमान स्वभावधारा :-

श्री आद्य स्तुतिकार से चरम तीर्थकर द्वारा एवं विदेही नाथ की दिव्यध्वनि में से प्रस्फुटित निर्मल स्वभावधारा अक्षुण्ण बहती हुई; भावलिंगी संतों द्वारा अविच्छिन्न प्रवाहित वह मंगलधारा; ज्ञानी धर्मात्माओं द्वारा अनवरतपने निर्झरती; जैनदर्शन की गरिमा को गुँजाती; नयज्ञान अर्थात् अज्ञान का प्रक्षालन करती और स्वभाव का स्थापन करती हुई आज भी हमें उपलब्ध है।

भरतक्षेत्र के भव्य जीवों की जहाँ आसन्न भव्यता ऊर्ध्व हुई वहाँ मधुमय "द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव" प्रकाशित हुआ। आत्मार्थी जीवों को पूज्य भाईश्री की यह मौलिक भेंट है। आपश्री के चंद्रवदन से झरा हुआ ज्ञान चंद्रिकामय अमृतकोष अर्थात् "स्वभाव से स्वभाव को जान, किसी नय से नहीं।" यह वचन की पराकाष्ठा है, साथ ही देशना का अंतिम चरण है। इसके बाद वास्तव में कोई वचन होता ही नहीं। अलम्..... अलम्..... अलम्।

निरपेक्ष वस्तु स्वभाव को निश्चयनय-व्यवहारनय से देखना वह ही विषमभाव है। और स्वभाव से स्वभाव को विचारना, देखना वह ही मध्यस्थ भाव है। स्वभाव से स्वभाव को जानने पर यह फायदा हुआ कि विधि-निषेध के क्लेशमय विकल्प विराम को प्राप्त हुए।

हे पूज्य भाईश्री! आपने स्वांग विहीन, नयवर्जित, गुँजता हुआ स्वभाव दर्शाकर; बारह अंग और चौदह पूर्व का सार दिया है। और उस उक्ति की याद दिलाई है कि : "गागर में सागर" इस पंक्ति को आपश्री ने अनमोल रूप से चरितार्थ किया है।

अतुल चैतन्य की गहराई को स्पर्शित आपश्री की प्रज्ञा ने, स्वभाव का अवगाहन करके, लोकोत्तर तत्त्व के सूक्ष्म रहस्यों का मंथन करके, और जो 'द्रव्यस्वभाव-पर्यायस्वभाव' उसकी जो मणिमुक्ता बिखेरी है वह दिगंबर दर्शन के निर्भ्रांत क्षितिज पर शाश्वत 'श्री' के रूप में सदा सम्मानित रहेगी। साथ ही सजग तत्त्व स्नेहियों को आत्मसात् करा देने में सक्षम और पूर्ण है और रहेगी।

(२) मंगलाचरण :-

'मंगलाचरण में स्तुतिरूप उपासना का उद्देश्य कहते हैं कि : **स्वस्वाभावोपलब्धये** मैं अपनी उपलब्धि के लिये सिद्धि की सिद्धि को प्राप्त हुये सिद्ध समूह की स्तुति करता हूँ। मेरी यह उपासना स्वस्वभाव की-आत्मा के वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति के लिये है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि स्वभाव का कभी अभाव नहीं हो सकता, वह सदा वस्तु में

1 - योगसार प्राभूत अमितगति आचार्य का मंगलाचरण

विद्यमान रहता है; तो फिर उस स्वभाव की उपलब्धि कैसी? और उसके लिये प्रयत्न कैसा?

उसके जवाब में मैं इतना ही कहना चाहती हूँ कि स्वभाव का कभी अभाव नहीं होता, वह सही है, परंतु उसका तिरोभाव (आच्छादन) होता है तथा हो सकता है। आत्मा का वैभाविक परिणमन सदा के लिये दूर करके उसे उसके शुद्ध स्वरूप में स्थित करना 'वह ही' स्वस्वभावोपलब्धि कहलाता है। जिसके लिये प्रयत्न होना जरूरी है।

(३) द्रव्य स्वभाव नयों के नखरों को नथने का हथियार है :-

द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव वह तो जिनेन्द्र देव और आचार्य भगवंतों का हृदय है। जैसे बेरी के सबसे ऊँचे बेर बहुत मीठे होते हैं वैसे ही यह सर्वोच्च कोटि की बात है। जैसा स्वभाव है वैसा स्वीकार करने पर भेदज्ञान अपनेआप हो जाता है। उसका वजन स्वभाव के ऊपर जाना चाहिए। नय अपेक्षित होने से नय में एकांत लगाए तो मिथ्या होता है परंतु स्वभाव अपेक्षित कहाँ है? वह तो निरपेक्ष है, अतः स्वभाव में एकांत लगाने पर सम्यक् एकांत प्रगट होता है।

(४) जिनवाणी में स्वभाव निधान के विधान :-

"²स्वभावेन ज्ञायकं" "आत्मा स्वभाव से ही ज्ञायक है।" "³आत्मा स्वभाव से ही प्रत्यक्ष ज्ञाता है।" "⁴जानना और आत्मा को जाननेरूप परिणमना" वह ज्ञेय का स्वभाव है। "⁵प्रमत्त-अप्रमत्त से रहित नित्य उद्योतरूप ज्ञायक स्वभाव, अनादि-अनंत सत्तारूप है।"

"⁶शुद्धनय एक ही है इसलिए वह सत्यार्थ और भूतार्थ है।" "⁷आबाल-गोपाल सभी को अनुभूति स्वरूप भगवान आत्मा स्वयमेव अनुभव में आ रहा है।" आचार्यदेव ने इसमें कहीं नय का प्रयोग किया ही नहीं। वह भगवान आत्मा कैसा है? "⁸सदा ही विज्ञानघन स्वभावी है।" "⁹उपयोग में उपयोग है" वह भी स्वाभाविक स्वभाव है। अर्थात् ज्ञान, स्वभाव से ही स्वभाव सिद्ध आत्मा को जानता है। वाह रे! वाह! निरपेक्ष स्वभाव तो वास्तव में अनुभवियों के अनुभव में ही स्थित है।

और जैसे सिद्धांत में स्वभाव दर्शाया है वैसे ही कहीं-कहीं दृष्टांत में भी स्वभाव झलकता है। "¹⁰शंख स्वभाव से ही श्वेत है।" जिनवाणी में रहे हुये कोहिनूर के हीरे उसे मिलते हैं जिसे स्वभाव चक्षु प्राप्त हो। परंतु जिनका हृदय मात्र नयज्ञान - खंडखंड ज्ञान से ही विमोहित है उसके लिये परम..... परम करुणा करके - आचार्य देव कहते हैं; "¹¹अयम् आत्मा नयक्षण खण्डयमानः सद्यः प्रणश्यति।" यह जीव वस्तु द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ऐसे अनेक विकल्परूप अनेक लोचन के द्वारा अनेकरूप देखने में आती हुई (सद्यः प्रणश्यति) खंडखंडरूप होकर ढूँढने पर भी मूलरूप में प्राप्त नहीं होती। अर्थात् नाश को प्राप्त होती है।

2 प्रवचनसार गाथा - २००

3 प्रवचनसार गाथा - १७२

4 समयसार गाथा - २

5 समयसार गाथा - ६

6 समयसार गाथा - ११

7 समयसार गाथा - १७-१८

8 समयसार गाथा - ७२

9 समयसार गाथा - १८१ से १८३

10 कलशटीका - १५० कलश

11 कलशटीका - २७० कलश

(५) जिनागम में प्रतिपादित पर्याय स्वभाव :-

संतों के वचन दुर्लभ और दुर्गम्य हैं; उनका नाप अज्ञानी की मति किसप्रकार नाप सकती है? इसलिए तो कहा है कि; पानी की शीत-उष्णता का नाप अँगुली से नहीं निकलता! लेकिन "12स्वभावग्राही ज्ञान से ही" उसका नाप निकलेगा। जो दिव्यध्वनि में आया है वह कुंद प्रभु कहते हैं। "नव तत्त्वों को भूतार्थनय से जानने पर सम्यग्दर्शन होता है।" 13नव तत्त्वों को "होने योग्य होते हैं" और पर्याय स्वभाव को निरपेक्ष जान। पर्याय को जानने में भूल रह जायेगी तो भी सम्यग्दर्शन नहीं होगा। यह पर्याय स्वभाव भी अंतरंग में मूर्तिमंत करने जैसा है। "14सत् अहेतुक एक ज्ञप्ति जिसका स्वभाव है" "15पर्याय उसके षट्कारक से" उसके "16जन्मक्षण में" होती है। "17क्षणिक उपादान" निरपेक्ष ही होता है।

आगम के आधार से भी स्वभाव की श्रद्धा करनेवाले महाभाग्यशाली हैं। "18इस जगत में वस्तु है वह स्वभावमात्र है।" स्वभाव शब्द ही इस बात को सिद्ध करता है कि स्व का भाव, निज का भाव होता है वह स्वभाव है। स्व का अस्तित्व जो कभी भाव के बिना नहीं होता उसे स्वभाव कहते हैं। और इसलिए कहा है कि, "स्व का भवन वह स्वभाव होने से....." "19ज्ञानक्रिया स्वभावभूत" है। साधक ऐसे स्वभाव की मौज करते-करते मोक्ष निकेतन में विराज जाते हैं। "20ज्ञायक नहीं पर का" दर्शक नहीं है, "संयत नहीं पर का" आत्मार्थी जीवों को ऐसे "ज्ञान-दर्शन-चारित्र" की पर्याय का निश्चय मिलने पर हृदय डोल उठता है। "21जीव भी ग्रहने नहीं जाता कर्णगोचर शब्द को", ऐसे निरपेक्ष स्वभाव की स्वरावली सुननी अच्छी लगती है और धर्मात्मा मुक्त-कंठ से सुनाते हैं। "22अर्थ विकल्पो ज्ञानं प्रमाणं" "एतत् अपि लक्षणंअसत्।" निर्विषय ज्ञान का स्वरूप किसी से, किसी अवलंबन के बिना कहा नहीं जा सकता; और स्वपर विषय से उस ज्ञान को सिद्ध करने पर वह सत् लक्षण नहीं रहता।

इसप्रकार अस्खलित द्रव्य स्वभाव ज्ञायक का भान कराता है और पर्याय स्वभाव परिणाम का यथार्थ ज्ञान कराता है।

इसप्रकार स्वभाव से स्वभाव को देखते हैं वहाँ स्वाभाविक स्वभाव में सहज पदार्पण हो जाता है। वह ही श्रेय है। हे! पूज्य भाईश्री! प्रमाणदृष्टि अलग, नयदृष्टि अलग, नयदृष्टि अलग और स्वभाव दृष्टि अलग दर्शाकर आपने इस पंचमकाल में स्वभाव की सन्निहित के स्वस्ति दिये हैं।

(६) सापेक्षदृष्टि सो मिथ्यादृष्टि और निरपेक्ष दृष्टि सो सम्यग्दृष्टि :-

23आत्मा का स्वभाव ज्ञान और ज्ञान का स्वभाव आत्मा को जानना है, उसमें दोनों बातें स्वभाव

12 कलशटीका - ६० कलश

13 समयसार गाथा - १३

14 समयसार गाथा - २७०

15 श्री पंचास्तिकाय ६२ गाथा

16 श्री प्रवचनसार १०२ गाथा

17 श्री समयसार जयसेन आचार्य १०२ गाथा

18 श्री समयसार गाथा ७१

19 श्री समयसार गाथा ६९, ७०

20 श्री समयसार गाथा ३५६-३६५

21 श्री समयसार गाथा ३७३ से ३८२

22 श्री पंचाध्याय गाथा ५४२ से ५४३

23 श्री समयसार गाथा १४४

से ही की। आत्मा का ज्ञान होने से अनादि से ज्ञान आत्मा को ही जान रहा है। वस्तु स्वभाव निरपेक्ष और नयातीत होने से..... वस्तु निरपेक्षपने ही जानने में आती है। इसलिए उसे जानने में किसी नय की आवश्यकता ही नहीं है।

निश्चयनय से भी आत्मा जानने में नहीं आता ऐसा कहकर आपको क्या कहना है? ज्ञान लक्षण का स्वभाव ही ऐसा है कि पर का लक्ष करता नहीं, और लक्ष्य का लक्ष छोड़ता नहीं और लक्ष्य-लक्षण का भेद रहता नहीं।

स्वभाव से ही जाननहार जानने में आ रहा है उसमें स्वभाव ही लक्ष में आता है। इस पारिणामिक भाव से चलते हुये फंक्शन का स्वीकार अर्थात् अनुभव। अनुभव में अनुभव नहीं दिखता, अनुभव में तो वस्तुस्थिति दिखती है। इसलिए स्वभाव से ही स्वभाव की सिद्धि और प्रसिद्धि होती है, परंतु किसी नय से नहीं। जो विकल्परूप निश्चयनय साधन हो तो अनुभव में साथ रहना चाहिए, परंतु अनुभव का उत्पाद होने पर उसका अस्तित्व ही नहीं रहता।

इसप्रकार द्रव्य को स्वभाव से देखने के फल में द्रव्यदृष्टि हुई और पर्याय को स्वभाव से देखने के फल में पर्याय का लक्ष छूटता है और पर्याय का यथार्थ ज्ञान होता है। इसप्रकार दोनों को स्वभाव से जानने पर एक अनुभव होता है। अतः फलित होता है कि ज्ञान अनादि-अनंत स्वभाव से ही आत्मा को जानता होने से उसमें नय की जरूरत नहीं रहती। और जो एक समय मात्र भी ज्ञान आत्मा को जानना छोड़ दे तो ज्ञान नहीं रहता।

(७) पंचमकाल में डबल इंजन लगता है :-

पर्याय किस नय से होने योग्य होती है? अरे! स्वभाव से ही "होने योग्य होती है।" पर्याय का कर्ता-कारण स्वभाव से ही पर्याय है; उसका कर्ता-कारण 'स्व' नहीं है और 'पर' भी नहीं है। 'होने योग्य होता है' ऐसा समझने पर निर्णय होता है। अनुभव से पहले ऐसा एक प्रकार आ जाता है। लेकिन इतने मात्र से अनुभव नहीं होता।

फिर "होने योग्य होता है" ऐसा भी जानना बंद हो जाता है और पर्याय का लक्ष छूटने पर ज्ञायक के दर्शन होते हैं। परंतु कोई जीव ऐसा है कि उसने मात्र अकर्ता के स्वभाव को जानकर ही अनुभव किया है उसे पर्याय स्वभाव का ख्याल नहीं है, उसमें खतरा है। उसके लिए सुंदर उदाहरण पूज्य भाईश्री देते थे; कि : तीन हजार फुट की ऊँचाई वाला कोई पर्वत है। अब इस पर्वत के ऊपर जब ट्रेन चढ़ती है, तब उस ट्रेन में डबल इंजन जोड़ने में आता है। आगे का ईंजन ट्रेन को आगे खींचता है, और पीछे का ईंजन ट्रेन को आगे बढ़ने के लिये धक्का मारता है। इसप्रकार आगे के ईंजन को ज्यादा बल मिलता होने से ट्रेन सरलता से पर्वत के ऊपर चढ़ाई चढ़ती है।

उसीप्रकार आत्मा अकर्ता है; केवल ज्ञाता है यह बात तो सत्य है, और किसी को उसमें अनुभव भी हो जाता है, परंतु "पर्याय होने योग्य होती है" यह पर्याय स्वभाव का पहलू कच्चा रह गया तो खतरा है। और पर्याय "होने योग्य होती है" यह पहलू पक्का करके उसका लक्ष छोड़कर अंदर जाये तो क्षायिकवत् सम्यग्दर्शन होता है अर्थात् डबल डोरे से काम होता है।

"पर्याय होने योग्य होती है" यह पर्याय स्वभाव का दूसरा ईजन लग गया होने से..... अर्थात् द्रव्य स्वभाव एवं पर्याय स्वभाव दोनों ख्याल में होने से उसे कालान्तर में भी पर्याय के कर्तापने की और कारणपने की भ्रांति नहीं होती है। इसलिए वह पीछे नहीं गिरता है। उसे स्वप्न में भी अर्थात् उपचार से भी पर्याय का कर्तृत्व भासित नहीं होता। पर्याय स्वभाव का पहलू परिपक्व होने से अप्रतिहत भाव से उठता है। अमृतचंद्रदेव की कथनी में ²⁵क्षायिक की ध्वनि गरजती है। ²⁶मैंने मोह को मूल में से उखाड़ दिया है। ²⁷भावक का भाव और ज्ञेय भाव हमें फिर से मोह उत्पन्न नहीं करेगा। ²⁸जो अरिहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर अपने द्रव्य-गुण-पर्याय जानता है "उसे मोह का क्षय होता है....."

(८) निरपेक्षता की चरम सीमा :-

जिसे आवरण नहीं है, जिसे अपेक्षा नहीं है, ऐसे निरपेक्ष तत्त्व की बात जगत के जीवों ने सुनी नहीं है। सर्वप्रथम तो निरपेक्ष स्वभाव को ही सापेक्ष मानना वह बड़े में बड़ी और पहले में पहली भूल है। यह वैभवशाली निरपेक्ष स्वभाव जिसके ख्याल में आता है उसके लिये दृष्टि का निधान खुल जाता है। श्री परमागम शास्त्र भी सापेक्ष के अदर्शन और निरपेक्ष स्वभाव के दर्शन कराते हैं।

जिनेन्द्रदेव की वाणी में वस्तु का स्वरूप सामान्य-विशेषात्मक प्रकाशित किया है। वस्तु दो पहलूवाली तो है; दो पहलू हैं तो 'निश्चय से शुद्ध और व्यवहार से अशुद्ध' ऐसा झूला झूलने के लिये नहीं हैं; अर्थात् उसमें अटकने के लिये नहीं हैं।

प्रमाण के बाहर जाना नहीं, और प्रमाण में अटकना नहीं उस सिद्धांत से..... पदार्थ में भेदज्ञान की चाबी लगाकर उसमें विधि-निषेध करके विशेष पहलू का लक्ष छोड़ना है। क्योंकि निरपेक्ष तत्त्व की दृष्टि के बिना अपेक्षाओं का ज्ञान सम्यक् होता ही नहीं है। अपेक्षाओं के लक्ष से अपेक्षा सच्ची नहीं होती, परंतु निरपेक्ष तत्त्व की दृष्टि पूर्वक अनेक अपेक्षायें ज्ञान में सहज ज्ञात हो जाती हैं।

अपेक्षा त्रिकाली ज्ञायक में नहीं है, अपेक्षा सामान्य उपयोग लक्षण में नहीं है, अपेक्षा दृष्टि में नहीं है, अपेक्षा लक्षरूप ज्ञान में नहीं है, इसप्रकार स्वभाव निरपेक्ष है।

ऐसे निरपेक्ष स्वभाव को निरपेक्ष होकर जब बेपरवाह होकर देखता है तब उसे ऐसी भ्रांति नहीं होती कि निरपेक्ष स्वभाव को देखूँगा तो दूसरी नय ढक जायेगी तो दूसरी नय के विषय का क्या होगा? प्रमाण का द्रोह होगा तो? एकांत स्वभाव को देखूँगा तो फिर निश्चयाभासी हो जाऊँगा तो? वगैरह प्रकार के विकल्पों की सेना उत्पन्न ही नहीं होती। उपरोक्त बात की पुष्टिरूप एक सुंदर सिद्धांत :- ²⁹"जाने हुये का श्रद्धान होता है," इस न्याय से यदि ज्ञान एकांत सापेक्ष द्रव्य को ही जानता हो तो सापेक्ष द्रव्य का श्रद्धान होना चाहिए, परंतु दृष्टि में तो पर्याय मात्र से रहित ज्ञायक देव का श्रद्धान होता है। इसलिए जाने हुये का श्रद्धान होता होने से; ज्ञान भी सर्वप्रथम निरपेक्ष ध्रुव ज्ञायक को जानता है। इसप्रकार निरपेक्ष स्वभाव अपेक्षित नहीं है।

निरपेक्ष स्वभाव स्वभाव से ही सर्वथा निरपेक्ष है इसलिए स्वभाव सम्यक् एकांत में ही दर्शन

25 श्री प्रवचनसार गाथा २००

26 श्री समयसार गाथा ३२

27 श्री समयसार गाथा ३२ - भावार्थ

28 श्री प्रवचनसार गाथा ८०

29 श्री समयसार गाथा १७-१८

देता है। जहाँ निरपेक्ष स्वभाव में समर्पण हुआ वहाँ सभी अपेक्षाएँ अपनेआप प्रगट हो जाती हैं।³⁰ स्त्री एक है, धर्म अनेक हैं। परंतु विवाह से पहले उसे काकी, भाभी - वगैरह अपेक्षाएँ लगती नहीं हैं। एक पति को जैसे ही समर्पित हुई वहाँ सभी अपेक्षाएँ स्वतः लग जाती हैं। पिता की ओर से पुत्री है उसी समय ननंद की ओर से भाभी है। निष्कर्ष यह है कि प्रथम निरपेक्ष को जान फिर अपेक्षाओं का ज्ञान हो जाता है।

³¹ज्ञानी की सभी अपेक्षाएँ ज्ञानमय होती हैं, और अज्ञानी की सभी अपेक्षाएँ अज्ञानमय होती हैं। **अपेक्षाओं का ज्ञान हमेशा लक्ष के बिना होता है। और निरपेक्ष स्वभाव का ज्ञान हमेशा लक्षपूर्वक ही होता है। यह महासिद्धांत है।** पुनः साधक की सारी ही विवक्षाएँ ज्ञानमय होने से उसकी प्रत्येक विवक्षा का स्वर है "मैं ज्ञानमय हूँ।" अज्ञानी भले निश्चय से बात करता हो; तो भी उसकी सभी अपेक्षाएँ ज्ञायक को तिरोभूत करती हुई प्रगट होती हैं। "निश्चय से शुद्ध हूँ" ऐसा कहता है तब भी अज्ञान के गर्भ में पड़ी हुई प्रतिपक्ष अपेक्षा 'व्यवहार से अशुद्ध हूँ' वैसा अपनेआप पुष्ट होता है।

अप्रतिबुद्ध जीव प्रथम से ही अपेक्षा लगा...लगाकर स्वभाव को अपेक्षा की आड़ देता है और वह निरपेक्ष स्वभाव को सापेक्ष मानता होने से उसकी मिथ्या अनेकांत पूर्वक की अपेक्षा से मिथ्यात्व ही पुष्ट होता रहता है। तदुपरांत उसने एकांत अपेक्षाओं के ज्ञान को ही अर्थात् नयज्ञान को ही सम्यग्ज्ञान मान लिया होने से उसे निरपेक्ष ज्ञानस्वभाव की सुगंध नहीं आती है। अपेक्षा लगा...लगाकर पंडित होता है लेकिन ज्ञानी नहीं होता। और एकांत अपेक्षाओं का ज्ञान तो द्रव्यलिंगी मुनि को भी होता ही है न? लेकिन वह दर्शन शुद्धि का कारण नहीं है।

पुरुषार्थ मूर्ति श्री सोगानी जी फरमाते हैं कि "³²मूल बात में अपेक्षा लगाना वह मुझे खटकता है। क्योंकि उसमें ढीलापन हो जाता है।" जहाँ एक ऐसा स्वरूप है, जहाँ एक ऐसा वस्तु का स्वभाव है, जहाँ अपेक्षा आती ही नहीं, जिसमें अपेक्षा लगती ही नहीं। जिस स्वभाव में अपेक्षाओं की शून्यता है ऐसा परिपूर्ण एक स्वभाव है। दृष्टि को भी दृष्टि की अपेक्षा पसंद नहीं है। श्रद्धा की पर्याय में अपेक्षा लगती ही नहीं है। वह निरपेक्ष स्वभाव की चरम सीमा है।

यह निरपेक्ष स्वभाव का ताप ही ऐसा है कि जहाँ अनंत अपेक्षाएँ स्वाहा हो जाती हैं, जहाँ उनका विसर्जन हो जाता है, जहाँ पूर्ण विराम हो जाता है। ऐसे स्वभाव में अपेक्षा लगायें तो? तत्क्षण अपेक्षा में से अपेक्षा का ही जन्म होना है। और स्वभाव में अपेक्षा लगायी तो फिर स्वभाव निरपेक्ष कहाँ रहा? "मैं स्वभाव अपेक्षा से ज्ञायक हूँ।" स्वभाव में भी स्वभाव की अपेक्षा लगा दी, बोलो? निरपेक्ष स्वभाव को अपेक्षित देखा न? तो फिर निर्विकल्प किसप्रकार से होगा? इसलिए स्वभाव को स्वभाव की अपेक्षा से भी मत देखो। क्योंकि "³³स्वभाव से ही ज्ञायक है।" और परमागम में ऐसी बात लिखी है जैसे कि "³⁴ज्ञायकभाव सामान्य अपेक्षा से ज्ञान स्वभाव में स्थित होते हुये भी.....!"

इस सूत्र के गर्भ में निरपेक्षता ही पड़ी हुई है। और उसका मर्म ज्ञानियों के हृदय में है।

30 माईधवल के नयचक्र में से

31 श्री समयसार गाथा १२८-१२९

32 द्रव्यदृष्टि प्रकाश बोल नंबर ३१५

33 द्रव्यदृष्टि प्रकाश बोल नंबर ३१५

34 श्री प्रवचनसार गाथा २००

यह विषय बहुत ही गूढ़ और गंभीर है। स्वभाव में आये बिना अपेक्षाओं के चक्कर में से विवर्जित हुआ नहीं जा सकता। इसलिए सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये समस्त अपेक्षाये परिहार्य हैं और उस ही समय सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है उसमें अपेक्षाये अपरिहार्य हैं।

भजन में भी आता है कि :

"³⁵पर्याय से अनित्य हो तो भले हो, द्रव्य से नित्य हो तो भले हो,

³⁶चित्त स्वरूप तो चित्त स्वरूप अनुभव करेंगे.... अनुभव करेंगे आनंद लहेंगे।" अतः सिद्ध होता है कि अपेक्षाओं के अभाव में अर्थात् विकल्प के अभाव में ही ज्ञान सम्यक् होता है। और ज्ञान सम्यक् होने पर उसमें स्याद्वाद का जन्म होता है। यह मार्ग का क्रम है। परंतु कोई पहले से अपेक्षाओं में चढ़ जाये.... स्वपरप्रकाशक में चढ़ जाये.... उसे? उसे ज्ञान प्रगट नहीं होता।

शीलवान पत्नी की दृष्टि में पति मुख्य होता है या गौण होता है? अरे! कैसी बात करते हो!!

पत्नी की दृष्टि में पति मुख्य नहीं अपितु सर्वस्व होता है। यदि मुख्य कहोगे तो गौणरूप से दूसरे पुरुष दृष्टि में स्वयं आ जायेंगे। इसलिए सर्वस्व अलग चीज है और मुख्य-गौण अलग चीज है। वैसे ही निरपेक्ष स्वभाव अलग वस्तु है और सापेक्ष का ज्ञान अलग वस्तु है।

सम्यक् एकांतरूप स्वभाव में आते ही दृष्टिपूर्वक ज्ञान प्रगट होता है। जिस समय ज्ञायक का लक्ष होता है उस ही समय जानने के स्वभाव से, सविकल्प स्वभाव से सापेक्ष धर्मों का अक्रम ज्ञान हो जाता है। यह जैनदर्शन की ब्यूटी है। यह ही वस्तु स्वभाव की परिपूर्णता है।

जाननहार को जाननहार होकर जानने रूप परिणमता है तब द्रव्य-पर्याय रूप अभेद वस्तु को मात्र जानता है। अब यहाँ "मात्र जानता है" उसमें निर्विकल्पता है। जानने के स्वभाव में मुख्य-गौण नहीं है। यदि जानने के धर्म में मुख्य-गौण करने जाये तो नयपक्ष उत्पन्न होता है। परस्पर दो विरोधी भावों को अनुभूति के काल में ज्ञान अविरोध पूर्वक जानता है। निरपेक्ष के लक्ष से सापेक्ष का ज्ञान लक्ष बिना होता है वह यह स्वरूप है।

ज्ञान की उत्पत्ति का कारण --> अपेक्षाओं का अभाव।

ज्ञान की मध्यस्थता का कारण --> अपेक्षाओं का सद्भाव।

एक समय मात्र के काल में ज्ञान का ऐसा संपूर्ण स्वभाव प्रगट होता है वह ही ज्ञान की अचिंत्यता है।

(९) स्वभाव की निरपेक्षता अत्यंत निरापद है :-

सिद्ध भगवान जाननहार देखनहार हैं। किस नय से? उसमें जैसे, किसी को सवाल ही उत्पन्न नहीं होता; क्योंकि सिद्ध प्रभु स्वभाव से ही ज्ञाता हैं। अब यदि सिद्ध भगवान को नय नहीं हैं तो फिर सिद्ध का कारण ऐसे कारण परमात्मा को नय कहाँ से लगेंगे?

'द्रव्य स्वभाव और पर्याय स्वभाव' पुस्तक के एक-एक शब्द में अनंत भाव भरे हैं। स्वभाव के स्मरण बिना विभाव को टालने की वस्तुतः दूसरी कोई विधि ही नहीं है। स्वभाव से विचार करता है, उस विचार में भी कोई ऐसी अपूर्वता है कि भाव-मन का अवलंबन छूट जाता है और ज्ञायक के सन्मुख

35 भेदज्ञान भजनावली में से

36 भेदज्ञान भजनावली में से

होकर परिणम जाता है। ऐसे अद्भुत से अद्भुत चमत्कारिक स्वभाव के आविष्कर्ता पूज्य भाईश्री आपने नयातिक्रान्त होने की उत्तम रसायनरूप औषधि दी है।

यह "द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव" नयों के विरोध के चक्रवात को विलीन करने की क्षमता वाला है। क्योंकि वस्तु नयातीत है और अनुभव ज्ञान भी नयातीत है। इसलिए वस्तु में विरोध नहीं है और अनुभव ज्ञान में भी विरोध नहीं है। परंतु विरोध तो तब तक है कि जब तक वस्तु को नय ज्ञान से देखता है। भजन में आता है कि

"ज्ञायक पर को नहीं जानता,
ज्ञायक ज्ञायक को ही जानता;
ये दोनों तो नयपक्ष हैं,
ज्ञायक नयों से पार....प्रभु में..."

ऐसे स्वभाव को स्वभाव से देखने गया क्या और फिर विकल्पातीत हुआ क्या! स्वभाव का आनंद ही कुछ ऐसा है कि स्वभाव में गया और फिर सादि-अनंतकाल स्वभाव में ही रह गया।

द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव जिनागम का सर्वस्व सार है। जैनशासन की शोभा है। सिद्धांतिक स्वरूप के साथ-साथ स्वतंत्रता का साम्राज्य है। स्वभाव निज अपरिमित वैभव से सदा संतुष्ट है, ऐसे स्वभाव को समझने के बाद ऐसे नयों की लक्ष्मी के प्रति कौन आकर्षित होगा? अंत में "ज्ञायक नयों से पार" ऐसे चरम उत्कर्ष "द्रव्यस्वभाव पर्याय स्वभाव की" चर्चा की महान निधि देनेवाले पूज्य भाईश्री.....!!

नयातीत पक्षातीत होने की विधि के दर्शक;
विकल्पातीत मनातीत होने की निधि के अर्पक;
सहज में प्रयोगातीत होने की सिद्धि के सर्जक;

स्वभावनिष्ठ..... पूज्य भाईश्री को.....
उपकृतांजली अर्पण।

अपूर्व आत्म स्वरूप की प्राप्ति के लिये उछलता हुआ वीर्य चाहिये,
उत्साहित भाव चाहिये, पूर्ण की (संपूर्ण की) प्रतीति चाहिये
और पूरे के (पूर्णता के) लक्ष का पूर्ण उत्साह चाहिये।
पूर्ण स्वभाव की तरफ का उत्साहित वीर्य केवलज्ञान लेकर ही पूरा होता है।
(पूज्य गुरुदेवश्री आत्मधर्म अंक - २७ पेज नं. ७४)